अन्य लोकों की
सुगम यात्रा

श्री ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

अन्य लोकों की सुगम यात्रा

[सर्वोत्तम योगाभ्यास द्वारा]

श्री ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापक आचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण भावना संघ

अनुवादिका: डा. प्रेमलता पालीवाल

भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट
हरे कृष्ण लैंड, गांधी ग्राम रोड
जुहू, बम्बई—५४

विषय-सूची

पहली आवृत्ती—जनवरी १९७७/प्रतीयाँ १०,०००
दूसरी आवृत्ती—मार्च १९७७/प्रतीयाँ १०,०००
तीसरी आवृत्ती—अक्तूबर १९७७/प्रतीयाँ १०,०००
चौथी आवृत्ती—नवम्बर १९७७/प्रतीयाँ १५,०००
पाँचवीं आवृत्ती—जून १९७८/प्रतीयाँ ४०,०००

Published by Gopal Krishna Das Adhikari for the
Bhaktivedanta Book Trust, Hare Krishna Land, Juhu, Bombay 400018
Phototype Set by Spads Phototype Setting Industries (P) Ltd.
101 A, Poonam Chambers, Dr. Annie Besant Road, Worli, Bombay 400064
Printed by D. V. Sheth at Galiakotwala Printers (Pvt.) Ltd.
125, Nagindas Master Road, Fort, Bombay 400 023. Phone: 274

संसार के वैज्ञानिकों को समर्पित
मेरे सद्गुरु
ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य १०८
श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज
के आशीर्वाद से।

प्रस्तावना :

एक प्राणधारी को, प्रमुखतः सभ्यजन को, शाश्वत सुख सहित जीने की स्वाभाविक इच्छा होती है। यह बिल्कुल नैसर्गिक है क्योंकि अपनी मौलिक दशा में प्राणिमात्र शाश्वत भी है और सुखी भी। फिर भी वर्त्तमान आश्रित जीवन में, वह आवर्त्तक (बार-बार होने वाले) जन्म और मृत्यु से जूझने में संलग्न है। इसीलिए उसने न तो सुख ही प्राप्त किया है और न अमृतत्त्व।

अभी हाल ही में मानव को दूसरे ग्रहलोकों में यात्रा करने की रुचि जाग्रत हुई है। यह भी पूर्णतः स्वाभाविक है क्योंकि संवैधानिक रूप से उसे भौतिक या आध्यात्मिक आकाश के किसी भाग में जाने का अधिकार है। ऐसी यात्रा अत्यन्त लुभावनी और उत्साहवर्धक है क्योंकि ये आकाश विभिन्न गुणों से मिश्रित असीमित लोकों से परिपूर्ण हैं और ये सब प्रकार के जीवधारियों द्वारा निवासित हैं। योगाभ्यास द्वारा वहाँ यात्रा करने की इच्छा को पूर्ण किया जा सकता है जिस साधन के माध्यम से वांछित ग्रहलोक को जाया जा सकता है—सम्भवतः उन ग्रहलोकों को जहाँ जीवन मात्र शाश्वत या सुखद ही नहीं है किन्तु जहाँ पर भोग्य पदार्थों के विभिन्न प्रकार भी उपलब्ध हैं। जो कोई भी आध्यात्मिक ग्रहलोकों का स्वातंत्र्य प्राप्त कर लेता है उसे इस जन्म, जरा, रोग व मृत्यु से ग्रसित दुःखद लोक में लौटने की रञ्चमात्र भी आवश्यकता नहीं।

कोई भी व्यक्ति अपने वैयक्तिक प्रयास द्वारा इस पूर्णावस्था को बहुत सुगमता से प्राप्त कर सकता है। वह अपने घर में भी भक्ति योग के इस निर्दिष्ट उपाय का साधारणत: अनुशीलन कर सकता है। उचित मार्ग निर्देशन में, यह उपाय सरल व सुगम है। यहाँ साधारणतया लोगों को और विशिष्टत: दार्शनिकों व धर्माचार्यों को यह सूचित करने का प्रयास किया गया है कि योगों में सर्वश्रेष्ठ भक्तियोग द्वारा कैसे कोई अपने को अन्य ग्रहलोकों में स्थानान्तरण कर सकता है।

१

अप्राकृत जगत

भौतिक विज्ञान अन्ततोगत्वा एक दिन उस अप्राकृत संसार की खोज कर लेगा जो कि अभी तक घोर भौतिकतावाद के विरुद्ध युद्ध करने वालों से अपरिचित है। वैज्ञानिकों के अप्राकृत आधुनिक दृष्टि-कोण के सम्बन्ध में दिनांक २७ अक्टूबर, १९५९ के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' ने निम्न समाचार प्रकाशित किया—

—स्टाकहोम, अक्टूबर २६, १९५९—दो अमरीकन आणविक वैज्ञानिकों को १९५९ का नोबिल भौतिकी पुरस्कार प्रोटोन विरुद्ध आविष्कार के लिए प्राप्त हुआ जिन्होंने सिद्ध किया कि पदार्थ दो प्रकार से उपस्थित रहता है, कणों के रूप में और कण-विरोधों के रूप में। ये वैज्ञानिक हैं इटली जात डा. एमिलो सर्ज, ६९, एवम् डा. ओवन चेम्बरलेन जो फ्रांसिसको में पैदा हुए। इस उपपत्ति के एक नवीन सिद्धान्तानुसार एक ऐसा अप्राकृत संसार लोक होना चाहिए जो कि अप्राकृत तत्वों से निर्मित हो। यह भौतिक तत्व विरोधी लोक उन आणविक और अर्धाणविक कणों से बना होगा जो कि हमारी इस दुनियाँ से उलटे चक्र में घूम रहे होंगे। यदि ये दो लोक कभी आपस टकरावेंगे तो दोनों एक अन्धकारी चमक में सदा के लिए पूर्ण विनष्ट हो जावेंगे।

इस कथन में दो प्रस्तावनायें निम्नवत् प्रस्तुत की गई हैं—

१. एक अप्राकृत अणु या कण है जो कि भौतिक अणुओं के विपरीत गुणों से निर्मित है।

२. इस भौतिक संसार के अतिरिक्त एक और संसार है जिसका हमें सीमित अनुभव मात्र है।

३. अप्राकृत और प्राकृत संसार किसी निश्चित समय में एक दूसरे से टकरा सकते हैं और स्वतः को विनष्ट कर सकते हैं—

इन तीनों विषयों में से, आस्तिक विद्या के हम विद्यार्थी नं. १ और नं. २ से पूर्णतः सहमत हैं किन्तु हम तीसरे विषय का समर्थन केवल अप्राकृत तत्त्व की सीमित वैज्ञानिक परिभाषा के अन्तर्गत ही कर सकते हैं। कठिनाई इस बात में है कि अप्राकृत तत्त्व से सम्बन्धित वैज्ञानिकों का दृष्टिकोण मात्र भौतिक ऊर्जा के अन्य प्रकार तक ही विस्तृत है जबकि वास्तविक अप्राकृत तत्त्व आत्मा होना चाहिए। पदार्थ जैसी कि इसकी बनावट है विनाशगत है, किन्तु अप्राकृत तत्त्व यदि वास्तव में वह समस्त भौतिक लक्षणों से वियुक्त है तो उसे स्वभावतः विनाश विमुक्त होना चाहिए। यदि पदार्थ विनाशमय और वियुक्ति सङ्गत (अलग होने योग्य) है, तो अप्राकृत तत्त्व अविनाशी व अवियुक्त (अलग न होने योग्य) होना चाहिए। हम इन प्रस्तावों की चर्चा न्याय सङ्गत शास्त्रीय दृष्टिकोण से करने का प्रयास करेंगे।

समस्त विश्व में वेद सर्वाधिक मान्य शास्त्र हैं। वेद चार भागों में विभक्त हैं—ऋक्, साम, यजुः और अथर्व। सामान्य समझ वाले व्यक्ति के लिए वेदों का विषय बहुत कठिन है। व्याख्यार्थ, ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारत व अठारह पुराणों में चार वेद वर्णित हैं। रामायण भी एक ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें वेद सम्बन्धी समस्त आवश्यक जानकारी संनिहित है। अतः चारों वेद, वाल्मीकिकृत रामायण, महाभारत और पुराण वैदिक साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। उपनिषद् चारों वेद के ही भाग हैं और वेदान्त सूत्र वेदों का नवनीत है। समस्त वैदिक साहित्य के संक्षिप्तीकरण हेतु, भगवद्गीता समस्त उपनिषदों का सार एवम् वेदान्त सूत्रों का प्राक्कथन स्वीकार किया जाता है।

परिणाम स्वरूप, केवल भगवद्गीता से ही वेदों का सार प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि यह श्रीकृष्ण की वाणी से निसृत है जो उस अप्राकृत लोक से इस प्राकृत संसार में दिव्य शक्ति का पूर्ण ज्ञान प्रदान करने हेतु अवतरित होते हैं।

भगवद्गीता में भगवान की दिव्य शक्ति को परा प्रकृति कहा गया है। अभी हाल ही में वैज्ञानिकों ने खोज की है कि क्षय होने वाले पदार्थ दो प्रकार होते हैं किन्तु गीता अति विशुद्ध रूप से पदार्थ व पदार्थ विपरीत तत्त्व के चिन्तन स्वरूप को शक्ति के दो विशिष्ट प्रकारों में वर्णित करती है। शक्ति एक है जिसने भौतिक संसार को बनाया और उसी ने अपने उच्चतर रूप में अप्राकृत (चिन्मय) लोक को भी निर्मित किया। प्राणधारी उच्चतर शक्ति की श्रेणी में आते हैं। निम्न शक्ति अथवा भौतिक शक्ति अपरा प्रकृति के नाम से कही जाती है। गीता में, इस प्रकार, रचनात्मक शक्ति को अपरा एवम् परा प्रकृति के नाम से सम्बोधित किया गया है।

पदार्थ में कोई सृजनात्मक शक्ति नहीं होती है। जब यह प्राणिक शक्ति द्वारा संचालित होती है तो भौतिक पदार्थों का निर्माण होता है। अतः अपने अपरिपक्व रूप में पदार्थ परात्पर सत्ता की ही सुप्त शक्ति है। जब कभी हम शक्ति के विषय में सोचते हैं तो शक्ति के स्रोत के विषय में सोचना भी स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ, जब हम विद्युत् शक्ति के बारे में सोचते हैं, हम उसी समय उस शक्ति-उत्पादन-केन्द्र के विषय में भी सोचते हैं जहाँ वह उत्पादित हो रही है। शक्ति स्वयं में पर्याप्त नहीं है। वह उस श्रेष्ठ व्यक्ति से अनुशासित है जिसके आधीन वह कार्य करती है। उदाहरण स्वरूप, अग्नि दो अन्य शक्तियों, प्रकाश व ऊर्जा का स्रोत है। प्रकाश व ऊर्जा का अग्नि से बाहर कोई अस्तित्व नहीं। इसी प्रकार, निम्न व उच्च शक्तियाँ उस स्रोत से निर्गमित हैं जिन्हें कुछ भी नाम दिया जा सकता है। शक्ति का वह स्रोत ऐसा होना चाहिए जिसे प्रत्येक वस्तु का ज्ञान हो। वह उच्चतम व्यक्ति

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही हैं जो कि सर्वाधिक आकर्षक व्यक्ति हैं।

वेदों में पुरुषोत्तम अथवा परम सत्य को भगवान् कहा गया है—भगवान् अर्थात् बहुधनी वह व्यक्ति जो समस्त शक्तियों का उद्गम स्थान हो। अर्वाचीन वैज्ञानिकों द्वारा दो प्रकार की सीमित शक्तियों की खोज तो केवल विज्ञान की प्रगति का शुभारम्भ मात्र है। अब तो उन्हें उन दो कणों व अणुओं के आविष्कार के लिए आगे बढ़ना चाहिए जिन्हें वे प्राकृत तथा अप्राकृत तत्त्व कहते हैं।

अप्राकृत कण कैसे वर्णित किया जा सकता है? हमें भौतिक कणों व अणुओं का तो अनुभव है किन्तु हमें अप्राकृत अणुओं का कोई अनुभव नहीं है। फिर भी भगवद् गीता अप्राकृत तत्त्व का निम्नवत् विशद वर्णन करती है :—

"इस भौतिक शरीर में ही अप्राकृत तत्त्व रहता है। यह भौतिक शरीर विकास के क्रम में शैशवावस्था से बाल्यावस्था, बाल्यावस्था से युवावस्था व वृद्धावस्था तक बदल रहा है जिसके उपरान्त अप्राकृत तत्त्व जराग्रस्त, कर्म करने के अयोग्य शरीर को त्याग देता है और पुनः अन्य शरीर को धारण करता है।"

(गीता २। १३)

जीवित शरीर की यह व्याख्या शक्ति के द्विविध प्रकारों के आविष्कार को सम्पुष्ट करती है। जब उनमें से एक अप्राकृत तत्त्व प्राकृत शरीर से वियुक्त होता है तो यह पाँच-भौतिक काया सर्वथा व्यर्थ हो जाती है। इस प्रकार, अप्राकृत कण निःसन्देह प्राकृत शक्ति से श्रेष्ठतर हैं।

अतः किसी को भी भौतिक शक्ति के विनाश पर रोना नहीं चाहिए। सब प्रकार के इन्द्रिय भोग—गर्म और ठण्डे, सुख-दुःख मात्र—भौतिक शक्ति के ही परस्पर कार्य हैं जो कि ऋतु-परिवर्त्तन की भाँति आते और चले जाते हैं। ऐसे भौतिक परिवर्त्तनशील क्षणिक दर्शन

या तिरोभाव से यह सिद्ध है कि यह भौतिक शरीर उस भौतिक शक्ति से निर्मित है जो जीव शक्ति से निम्न है।

(गीता २। १४)

कोई भी बुद्धिमान पुरुष जो कि सुख और दुःख से चिन्तित नहीं हैं यह जानकर कि ये तो भौतिक शक्ति के विभिन्न भौतिक रूप हैं जो कि भौतिक शक्ति से संघर्षण स्वरूप पैदा हुआ है वह उस अप्राकृत संसार को पुनः प्राप्त करने में समर्थ है जहाँ जीवन शाश्वत-ज्ञान व शाश्वत-सुख से परिपूर्ण है।

(गीता २। १५)

अप्राकृत लोक की यहाँ चर्चा है—इसके अतिरिक्त बताया गया है कि अप्राकृत संसार में ऋतु परिवर्त्तन सम्बन्धी कोई उतार चढ़ाव नहीं हैं। वहाँ प्रत्येक वस्तु शाश्वत, आनन्ददायक एवं ज्ञानपूर्ण है। किन्तु जब हम इस "लोक" की तरह चर्चा करते हैं तो हमें स्मरण रहे कि हमारे भौतिक अनुभव के परे इस लोक के रूप हैं और साथ ही निजी सामग्री व विभाग भी।

भौतिक शरीर नश्वर है और इसलिए यह परिवर्त्तनशील व क्षणभंगुर है—इसी प्रकार भौतिक संसार भी। किन्तु अप्राकृत प्राणिक शक्ति अविनाशी है और इसलिए यह चिरस्थायी है। कुशल वैधानिकों ने भौतिक व अप्राकृत कणों के विभिन्न गुणों को क्रमशः अनित्य व नित्य कहा है।

(गीता २। १६)

पदार्थ के दो प्रकारों के आविष्कारकों को अप्राकृत पदार्थ के गुणों को अभी ढूँढ़ना है। किन्तु भगवद् गीता में निम्नरूपेण इसका एक विशद वर्णन पूर्वतः उपलब्ध है। वैज्ञानिक, इस मूल्यवान सूचना के आधार पर, आगे खोज कर सकते हैं—

अप्राकृत कण भौतिक कणों से अधिक सूक्ष्म हैं। यह जीवन शक्ति इतनी अधिक शक्तिशाली है कि वह भौतिक शरीर के ऊपर

सर्वतोमुखी अपना प्रभाव डालती है। भौतिक कण की तुलना में अप्राकृत कण बहुल शक्ति से परिपूर्ण है—परिणामतः वह नष्ट नहीं हो सकता है।

(गीता, २। १७)

गीता में अप्राकृत पदार्थ का यह वर्णन तो शुभारम्भ मात्र है। उसे आगे और विस्तृत किया गया है:—

अप्राकृत पदार्थ का सर्वोत्तम स्वरूप स्थूल औरं सूक्ष्म भौतिक शरीरों में बन्द है। यद्यपि स्थूल व सूक्ष्म दोनों प्रकार के भौतिक शरीर नाशवान हैं, सूक्ष्म अप्राकृत पदार्थ शाश्वत है। अतः प्रत्येक की रुचि इस अमर सिद्धान्त में होनी चाहिए।

(गीता, २। १८)

विज्ञान की संसिद्धि तभी होगी जबकि भौतिक वैज्ञानिकों के लिए अप्राकृत पदार्थ के गुणों को जानकर उसे नश्वर भौतिक कणों के सम्पर्क से मुक्त कराना सम्भव हो। ऐसी विमुक्ति ही वैज्ञानिक उन्नति की चरम सीमा होगी।

वैज्ञानिकों के कथन में एकदेशीय सत्य है कि अप्राकृत अणुओं से निर्मित एक संसार है और भौतिक एवम् अप्राकृत संसारों का टकराव दोनों के सर्व विनाश में प्रतिफलित होगा। एक प्रकार का टकराव तो निरन्तर जारी है; भौतिक कणों का विनाश तो प्रतिक्षण हो रहा है और अप्राकृत तत्त्व मुक्ति की दिशा में प्रगतिशील है। गीता में यह निम्नवत् वर्णित है—

अप्राकृत पदार्थ, जो कि सचेतन है, भौतिक पदार्थ को कार्य के लिए प्रेरित करती है। यह चेतन तत्त्व सदैव अविनाशी है। जब तक यह अप्राकृत तत्त्व भौतिक शक्ति के पिण्ड में रहता है जिसे स्थूल व सूक्ष्म शरीर के नाम से जाना जाता है, तब तक वह सत्ता एक जीवित इकाई के नाम से जानी जाती है। दो कणों के निरन्तर टकराव में, अप्राकृत तत्त्व का कभी विनाश नहीं होता है। कोई भी व्यक्ति किसी भी समय—

भूत, वर्त्तमान या भविष्यत् काल में इस अप्राकृत तत्व का विनाश नहीं कर सकता।

(गीता, २। १६)

अत: हम सोचते हैं कि वह सिद्धान्त, जो कि भौतिक और अप्राकृत संसारों के टकराव पर दोनों लोकों का विनाश मानता है, केवल वैज्ञानिकों के अप्राकृत तत्त्व सम्बन्धी सीमित परिभाषा के परिपेक्ष में ही उचित है। गीता अप्राकृत अविनाशी तत्व के स्वभाव को इस प्रकार वर्णित करती है—

"सूक्ष्म" एवम् अपरिमाणित अप्राकृत तत्त्व सदैव अविनाशी नित्य एवम् शाश्वत है। कालोपरान्त, भौतिक तत्त्व के विनाश होने पर यह भौतिक बन्धन से मुक्त हो जाता है। यही सिद्धान्त भौतिक व अप्राकृत संसारों के साथ काम करता है। अप्राकृत तत्व के विनाश का भय किसी को नहीं होना चाहिए क्योंकि वह भौतिक लोकों के विनाशोपरान्त भी स्थित रहता है।"

(गीता, २। २१-२२)

प्रत्येक निर्मित वस्तु एक बिन्दु पर जाकर विनष्ट हो जाती है— भौतिक शरीर एवम् भौतिक संसार दोनों ही सृजन किए जाते हैं अत: वे विनाशी हैं जबकि अप्राकृत वस्तु कदापि निर्माण नहीं होती और परिणामत: उसका कभी विनाश नहीं होता। यह भी गीता में प्रतिपादित है:—

अप्राकृत पदार्थ जो कि जीवात्मा है कभी उत्पन्न और निर्मित नहीं होता। वह चिरस्थायी है। वह न तो जन्म लेता है और न मरता है— वह न तो बार बार निर्मित होता है और न बार बार नष्ट होता है। वह सदैव स्थित है, अत: वह पुराणतम पुराण है, फिर भी वह पूर्ण पुष्ट और नवीन रहता है। यद्यपि भौतिक पदार्थ विनष्ट हो जाता है, किन्तु अप्राकृत तत्त्व कभी भी विकृत नहीं होता।

(गीता, २। २०)

यही सिद्धान्त अप्राकृत विश्व एवम् अप्राकृत तत्त्व के लिए भी लागू है। जब कि प्राकृत विश्व नष्ट हो जाता है, अप्राकृत विश्व सभी परिस्थितियों में स्थिर रहता है। इसे और विस्तार से कहा जायगा। वैज्ञानिक गण गीता से यह भी सीख सकते हैं:—

वह प्रबुद्ध जन जो कि अप्राकृत तत्त्व (आत्मा) के अविनाशीपन को भली भाँति जानता है वह यह भी जानता है कि इसे किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं किया जा सकता।

(गीता, २। ३०)

आणविक वैज्ञानिक भौतिक संसार का विनाश परमाणु अस्त्रों द्वारा सम्भव सोच सकते हैं, किन्तु उसके अस्त्र अप्राकृत संसार को नाश नहीं कर सकते। अप्राकृत पदार्थ आत्मा का निम्न पंक्तियों में स्पष्ट वर्णन है:—

वह न तो किसी भौतिक अस्त्र द्वारा काटा ज़ा सकता है और न अग्नि में जलाया जा सकता है। न ही जल इसे गीला कर सकता है न यह मर सकता है और न सूख सकता है और न हवा इसे सुखा सकती है। यह तो अविभक्त है, अदाह्य है और अघुलनशील है चूँकि यह शाश्वत है यह क़िसी शरीर में प्रवेश कर सकता है और किसी को भी छोड़ सकता है। स्वयं नित्य होने के कारण, इसके गुण सदा स्थिर हैं। यह अनिर्वचनीय है क्योंकि यह समस्त भौतिक गुणों के विपरीत है। साधारण मस्तिष्क द्वारा यह अगम्य है। यह अविकारी है। अतः अप्राकृत पदार्थ आत्मा के विषय में किसी को शोक नहीं करना चाहिए।

(गीता, २। २३-२५)

इस प्रकार भगवद् गीता तथा अन्य वैदिक साहित्य में परात्पर अप्राकृत आत्म शक्ति को चिन्मयी शक्ति अथवा जीवात्मा के नाम से स्वीकार किया गया है। इसको जीव भी कहा गया है। इस जीवन तत्त्व को कुछ भौतिक तत्त्वों के मेल से बनाया नहीं जा सकता। आठ तत्त्वों को निम्न श्रेणियों में रखा गया है और वे हैं:—

१. पृथ्वी, २. जल, ३. अग्नि, ४. वायु, ५. आकाश, ६. मन, ७. बुद्धि, ८. अहङ्कार इनके अतिरिक्त एक जीवित शक्ति अथवा आत्म तत्त्व है जिसे श्रेष्ठ शक्ति के नाम से सम्बोधित किया गया है। इन्हें शक्तियों की संज्ञा दी गई है क्योंकि वे सर्वोत्तम व्यक्ति पुरुषोत्तम कृष्ण द्वारा अनुशासित होती हैं।

चिर काल तक भौतिकवादी उपर्युक्त आठ सिद्धान्तों की सीमा में परिवेष्टित रहा। किन्तु अब बड़े हर्ष का विषय है कि उसे अप्राकृत तत्त्व आत्मा व अप्राकृत ब्रह्माण्ड का अल्प प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त होने लगा है। हम आशा करते हैं कि क्रमशः भौतिकवादी उस अप्राकृत ब्रह्माण्ड का मूल्याङ्कन कर सकेगा जिसमें भौतिक सिद्धान्तों का रञ्चमात्र भी चिह्न नहीं है। वास्तव में "अप्राकृत" शब्दमात्र इंगित करता है कि यह सिद्धान्त समग्र भौतिक मूल्यों का विरोध करता है।

वास्तव में, कुछ तार्किक विद्वानों ने अप्राकृत आत्म तत्त्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। ये दो प्रकार के हैं और ये दो भ्रान्ति मूलक निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। प्रथम दल (घोर भौतिकवादी) या तो अप्राकृत आत्मपरक सिद्धान्त को अस्वीकार करता है अथवा किसी बिन्दु पर (मृत्यु) भौतिक सन्धि के विश्लेषण मात्र को स्वीकार करता है। दूसरा समुदाय अप्राकृत आत्म तत्त्व को अपने चौबीस गुणी भौतिक सिद्धान्त के सीधे विरोध में आया हुआ स्वीकार करता है। इस वर्ग को "सांख्य" कहते हैं और वे भौतिक सिद्धान्तों का सूक्ष्म परीक्षण करते हैं। अन्वेषण के अन्त में सांख्यवादी अन्ततोगत्वा एक निष्क्रिय आत्म तत्त्व स्वीकारते हैं। इतना होने पर भी, इन मानसिक मननशील विशेषज्ञों के लिए निम्न श्रेणीय शक्ति से परीक्षण करने के कारण समस्या उत्पन्न हो जाती है। वे उच्चकोटीय शक्ति से सूचना प्राप्त नहीं करते। आत्म तत्त्व सम्बन्धी विषय की वास्तविक स्थिति जानने के लिए परा शक्ति के चिन्मय भाव स्तर तक उठाना होगा। भक्तियोग उस पराशक्ति की ही क्रिया है।

भौतिक संसार के मञ्च से आत्म परक संसार की वास्तविक स्थिति का मूल्याङ्कन सम्भव नहीं है। यदि चेष्टा की भी जाय तो उसी प्रकार निरर्थक है जैसे कूपमण्डूक प्रशान्त महासागर की सीमाएँ जानने का प्रयास करता है और पूछता है "क्या महासागर इस कुएँ से दोगुना बड़ा है?" "तीन गुना अधिक विस्तृत या चार गुना?"— स्पष्टत: इस प्रकार की गणना असम्भव है। किन्तु परमेश्वर, जो कि अपरा और परा दोनों शक्तियों के अधीक्षक हैं, अपनी अहैतुकी कृपावश अवतार लेकर हमें अपने परा लोक (अप्राकृत संसार) का पूर्ण ज्ञान देते हैं। इस प्रकार हम जान सकते हैं कि अप्राकृत लोक क्या है। भगवान और जीवात्माएँ दोनों ही अपने गुणों में दिव्य हैं, ऐसा ज्ञान दिया गया है। इस प्रकार जीवात्माओं का विशद अध्ययन करने पर भगवान के विषय में जाना जा सकता है। प्रत्येक जीवात्मा एक व्यक्तिगत सत्ता है। अत: सर्वोत्तम जीवात्मा भी पुरुषोत्तम होना चाहिए। वैदिक साहित्य में सर्वोच्च पुरुष को "कृष्ण" की संज्ञा दी गई है। "कृष्ण" नाम जो कि पुरुषोत्तम भगवान् का बोधक है वास्तव में एकमात्र समझने योग्य सर्वोत्कृष्ट नाम है। वे ही अपरा एवम् परा दोनों शक्तियों (भौतिक व अप्राकृत) के नियन्ता है और "कृष्ण" नाम का ही अर्थ है कि वे सर्वोच्च अध्यक्ष हैं। गीता में भगवान् इसकी सम्पुष्टि इस प्रकार करते हैं—

प्राकृत व अप्राकृत दो संसार हैं भौतिक संसार आठ सिद्धान्तों में विभक्त निम्न स्वभाव युक्त शक्ति से निर्मित है। अप्राकृत संसार उच्च स्वभाव युक्त शक्ति से निर्मित है। चूँकि दोनों प्रकार की प्राकृत एवम् अप्राकृत शक्तियाँ पुरुषोत्तम प्रभु से ही उत्पन्न हैं, अत: यह निर्णय उचित है कि मैं (श्रीकृष्ण) समस्त सृष्टि एवम् प्रलय का मूल कारण हूँ।

(गीता, ७। ४-६)

चूँकि भगवान की दो शक्तियाँ (निम्न और श्रेष्ठ) भौतिक एवम्

अप्राकृत लोकों का विस्तार करती हैं, उन्हें 'सर्वोच्च परम् सत्य' कहा गया है। भगवान् कृष्ण इसी को गीता में इस प्रकार वर्णन करते हैं:—

हे अर्जुन ! मैं ही सर्वोच्च चैतन्य सिद्धान्त हूँ और मुझसे बृहद् अन्य कुछ भी नहीं है। प्रत्येक वस्तु मेरी शक्तियों पर आश्रित मुझ में ही मणियों के समान एक सूत्र में बँधी हुई है

(गीता, ७। ७)

आत्म तत्त्व एवम् अप्राकृत लोकों के सिद्धान्त सम्बन्धी खोज से बहुत काल पूर्व, गीता में यह विषय वर्णित है। गीता स्वयम् बताती है कि यह दर्शन पूर्वकाल में सूर्य के अध्यक्षीय देवता को सिखाया गया था जिसका तात्पर्य है कि गीता का उपदेश १२०,०००,००० वर्ष कुरुक्षेत्र युद्ध से पूर्व कृष्ण द्वारा दिया गया था। अब आधुनिक विज्ञान ने गीता में उपलब्ध सत्य-ज्ञान के एक अंशमात्र का आविष्कार किया है।

अप्राकृत संसार (दिव्य लोक) की कल्पना भी गीता में उपलब्ध है। सभी प्राप्य आंकड़ों से बिना किसी शङ्का के यह माना जा सकता है कि अप्राकृत लोक अप्राकृत आकाश में स्थित है, वह अप्राकृत (दिव्य) आकाश जिसे गीता में सनातन धाम या शाश्वत प्रकृति कहा गया है।

ठीक जिस प्रकार भौतिक अंणु भौतिक लोक का निर्माण करते हैं, अप्राकृत अणु समस्त सामग्री सहित अप्राकृत लोक का सृजन करते हैं। अप्राकृत दिव्य लोकों में अप्राकृत दिव्य प्राणी रहते हैं। इस दिव्य लोक में कोई भी पदार्थ निष्क्रिय नहीं होता। प्रत्येक वस्तु वहाँ एक जीवित सिद्धान्त है और वहाँ भगवान् स्वयम् परम् पुरुषोत्तम हैं। दिव्य लोक के निवासी अनन्त काल जीवी, अनन्त ज्ञानी और अनन्त सुखी हैं। दूसरे शब्दों में वे समस्त भागवदीय लक्षणों से संयुक्त हैं।

भौतिक लोक में सर्वोच्च ग्रह की संज्ञा सत्य लोक या ब्रह्मलोक को दी गई है। सर्वोत्कृष्ट गुणी व्यक्ति इस ग्रह में निवास करते हैं। ब्रह्मलोक का अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा है जो कि इस भौतिक संसार का प्रथम

सृजित व्यक्ति है। हम लोगों की भाँति ही ब्रह्मा एक जीवित प्राणी है किन्तु भूलोक में वह सर्वाधिक योग्य व्यक्ति है। यद्यपि वह इतना गुणी नहीं कि उसे भगवान् कहा जाय, किन्तु वह निश्चय ही सीधे भगवान् द्वारा अनुशासित जीवात्माओं की श्रेणी में है। भगवान् और जीवात्माऐं दोनों ही दिव्य लोक से सम्बन्धित हैं। अतः वैज्ञानिक वास्तव में समाज की बहुत बड़ी सेवा करेंगे यदि वे इस तथ्य की खोज करें कि दिव्य लोक कैसे अनुशासित है, कैसे वहाँ वस्तुऐं निर्मित होती हैं, कौन वहाँ पर अधिष्ठात्री विभूतियाँ हैं आदि आदि। वैदिक साहित्य में श्रीमद्भागवत विशद् रूपेण इन तथ्यों पर प्रकाश डालती है। गीता श्रीमद्भागवत की भूमिका है। समस्त वैज्ञानिकों को ज्ञान की इन दो महान् पुस्तकों को अवश्य पढ़ना चाहिए। ये वैधानिक प्रगति क्षेत्र में नवीन मार्गदर्शक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर अनेक अनुपम आविष्कारों को प्रस्तुत करेंगे।

चिन्मयवादी और भौतिकवादी दो स्पष्ट वर्ग के व्यक्ति हैं। चिन्मयवादी (सर्वातिशायी) वेद आदि सिद्ध शास्त्रों से ज्ञान प्राप्त करते हैं। वैदिक साहित्य उन सैद्धान्तिक स्रोतों से उपलब्ध हुआ है जो कि चिन्मयी शैष्य परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। यह शैष्य परम्परा गीता में भी वर्णित है। कृष्ण गीता में कहते हैं कि यह ज्ञान शतसहस्रों वर्ष पूर्व सूर्य के अधिष्ठातृदेवता के प्रति कहा गया था जिन्होंने इस ज्ञान को अपने पुत्र मनु से कहा जिनसे वर्त्तमान मानव की सृष्टि हुई है। मनु ने, क्रमशः, इस दिव्य ज्ञान को अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा जो कि पुरुषोत्तम श्रीराम के वंश में उनके पूर्वज हैं। शैष्य परम्परा की यह लम्बी कड़ी कृष्ण के आविर्भाव काल (५००० वर्ष पहिले) में टूट चुकी थी और इसी हेतु कृष्ण ने अर्जुन को पुनः गीता सुनाई और इस प्रकार इस युग में उसे इस ज्ञान का प्रथम शिष्य बनाया। अतः शिष्य परम्परा में जो कि अर्जुन से आरम्भ होती है इस युग के चिन्मयवादी (सर्वातिशायी सिद्धान्ती) हैं। भौतिक अन्वेषणादि

की चिन्ता न करके, चिन्मयवादी भौतिक व अभौतिक सत्य को (शैष्य परम्परा के सहारे) सर्वत: प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार घोर कष्ट से बच जाता है।

प्रगाढ़ भौतिकवादी पुरुषोत्तम के चिन्मय लोकों में किसी प्रकार भी विश्वास नहीं करते। अत: वे बड़े मन्दभागी हैं यद्यपि कभी कभी दूसरे प्रकार से वे अति गुणी, शिक्षित और समृद्ध होते हैं। भौतिक प्रसार के अभाव में वे सम्भ्रमित रहते हैं और उन्हें अप्राकृत आत्म तत्त्व सम्बन्धित वस्तुओं का रञ्चमात्र भी ज्ञान नहीं होता। अत: यह शुभसूचक है कि भौतिक विज्ञानवादी अप्राकृत दिव्य लोक के क्षेत्रों की ओर क्रमश: बढ़ रहे हैं। हो सकता है कि वे अप्राकृत दिव्य लोक सम्बन्धी विवरणों को जानने का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेने में सफल हों जहाँ कि पुरुषोत्तम प्रधान रूप में विराजमान हैं और जहां जीवात्माऐं प्रभु के सान्निध्य में रहती हैं और सेवा करती हैं। परमेश्वर के सेवक भी गुणों में उनके समरूप होते हैं किन्तु साथ ही वे सेवकों की भाँति अनुशासित रहते हैं। दिव्य लोक में शासित और शासक में कोई अन्तर नहीं होता है—यह सम्बन्ध सम्पूर्ण है और जो भौतिकता के रङ्ग से नितान्त परे है।

भौतिक संसार का स्वभाव विनाशी है। गीता के अनुसार भौतिक-वादी वैज्ञानिकों के इस कथन में आंशिक सत्य है कि टकराव होने पर प्राकृत और अप्राकृत लोकों के सर्वविनाश की सम्भावना है। प्राकृत संसार परिवर्तनशील गुणात्मक प्रकृति की संरचना है। इन गुणों को सत्त्व, रजस् व तमस् की संज्ञा दी गई है। प्राकृत संसार रजोगुण से निर्मित है जो कि सत्त्व से स्थित एवम् तमस् से विनष्ट हो जाता है। ये गुण भौतिक लोक में सर्वस्थित है और इसी लिए, प्रत्येक घण्टे, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक पल, सृजन, स्थिति और विनाश की क्रिया सम्पूर्ण विश्व में हो रही है। प्राकृत विश्व, ब्रह्मलोक, भी इन्हीं गुणों की प्रकृति से आविर्भूत है यद्यपि उस ब्रह्मलोक में सत्त्व के आधिक्य के कारण

जीवनावधि ४,३००,०००×१,०००×२×३०×१२×१०० सूर्य वर्ष कही जाती है। इतना लम्बा जीवन काल के होने पर भी ब्रह्मलोक विनाश का विषय है। यद्यपि पृथ्वी पर जीवन की तुलना में ब्रह्मलोक पर जीवन बहुत अधिक लम्बा है—अप्राकृत दिव्य लोकों के जीवन की तुलना में यह तो केवल एक क्षणिक चिनगारी है। परिणामतः गीता के वक्ता, श्रीकृष्ण, अपने परं धाम दिव्य लोक का महत्त्व बताते हैं।

श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं कि ४,३००,०००×१,०००×२×३० १२×१०० सौर वर्षों के अन्त में प्राकृत ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सभी ग्रह नष्ट हो जाते हैं और प्राकृत लोकों के नष्ट होते ही इन प्राकृत ग्रहों पर रहने वाले सभी प्राणधारी भी भौतिकरूपेण नष्ट हो जाते हैं। किन्तु जीवात्मा रचनात्मक दृष्टि से एक दिव्य कण है। फिर भी जब तक यह श्रेष्ठ कर्मों द्वारा स्वयं को उच्चतम दिव्य लोकों की ओर उन्मुख नहीं करता है वह भौतिक लोकों के विनाश होने के कारण भौतिकरूपेण विनष्ट हो जाता है और नवीन भौतिक संसार के पुनर्जन्म के साथ ही वह स्वयं पुनर्जन्म का विषय बन जाता है।दूसरे शब्दों में, वह आवागमन की वेदना में बँध जाता है। केवल वे ही जीवात्माऐं जो क भौतिक जीवन की प्रकट अवस्था में परात्पर प्रभु की सेवा-व्रत धारण करते हैं वे ही लोग निःसन्देहरूप से देहपात होने पर दिव्य लोकों को प्राप्त करते हैं। अमरत्त्व केवल उन्हीं का अधिकार है जो दिव्य कर्मों के सतत् अभ्यास से भगवान् के पास लौटते हैं।

ये दिव्य कर्म क्या हैं ? वास्तव में ये औषधि हैं। उदाहरणस्वरूप, जब कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है, वह डाक्टर के पास जाता है— डाक्टर उसे दवाई देकर रोगमुक्त कर देता है। इसी प्रकार, भौतिकवादी बीमार है—उसे किसी चिन्मयवादी डाक्टर के पास सलाह के लिए जाना चाहिए। उसका रोग क्या है ? वह लगातार जन्म मृत्यु, रोग और जरा से पीड़ित है। यदि एकबार वह दिव्योपचार पुनरावर्त्तन को स्वीकार कर लेता है तो वह उस दिव्य संसार में प्रवेश प्राप्त कर

सकेगा जहाँ जन्म और मृत्यु के स्थान पर शाश्वत जीवन है।

प्राकृत संसार का सर्वनाश दो प्रकार से सम्भव है। उसका एकदेशीय विनाश होता है प्रत्येक ४,३००,०००×१००० सौर वर्ष अथवा ब्रह्मलोक के प्रत्येक दिन के अन्त में जो कि प्राकृत जगत् में सर्वोच्च ग्रह है। एकदेशीय विनाश के समय, ब्रह्मलोक जैसे सर्वोच्च ग्रह विनष्ट नहीं होते हैं किन्तु ४,३००,०००×१,०००×२×३०×१२×१०० सौर वर्ष के अन्त में समस्त ब्रह्माण्ड उस दिव्य पिण्ड में विलीन हो जाता है जिससे कि भौतिक सिद्धान्त प्रस्रवित होते हैं और प्रदर्शन दिखाकर प्रलय में समा जाते हैं। प्राकृत आकाश से बहुत दूरी पर स्थित दिव्य लोक कभी प्रलय को प्राप्त नहीं होता है। वह प्राकृत संसार को समेट लेता है। जैसी कि विज्ञानविदों ने घोषणा की है भौतिक व दिव्य लोकों में कोई टकराव उत्पन्न हो सकता है जिसके कारण समस्त भूलोक विनष्ट हो जावेगा किन्तु अप्राकृत लोकों का विनाश नहीं होगा। चिरस्थायी दिव्य लोक भौतिक विज्ञान वेत्ता को अदृष्टिगोचर है। उसे केवल यह जानकारी है कि दिव्यलोक के वस्तु सिद्धान्त भूलोक के गुणों से सर्वशः विपरीत हैं। इतना होने पर भी, दिव्यलोक सम्बन्धी पूर्ण जानकारी उन्हीं पूर्ण मुक्त महानुभावों द्वारा हो सकती है जिन्होंने दिव्य सैद्धान्तिक स्थिति को पूर्णतः सिद्ध कर लिया है। परात्पर पुरुषोत्तम के एक विनम्र शिष्य को यही सूचना प्राप्त हुई है।

इस प्रकार ब्रह्मा को जो कि प्राकृत सृष्टि के प्रथम प्राणी हैं वैदिक ज्ञान प्राप्त हुआ। ब्रह्मा ने ही इस ज्ञान को नारद मुनि से कहा। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा भगवद्गीता का ज्ञान विवस्वान् को दिया गया और जब गुरुशिष्य-श्रवण-परम्परा टूट गई तो श्रीकृष्ण ने इसी ज्ञान को कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर सुनाया। उस समय श्रीकृष्ण से दिव्य ज्ञान के श्रवण हेतु अर्जुन ने शिष्य परम्परा का निर्वाह किया। अर्जुन ने भौतिकवादियों की समस्त भ्रान्तियों को मिटाने के लिए सब कुछ प्रासंगिक रूप से पूछा और श्रीकृष्ण ने ऐसे उत्तर दिये ताकि

कोई भी साधारण व्यक्ति उन्हें समझ सके। मात्र वे ही व्यक्ति जो कि प्राकृत संसार की रँगीनियों में फँसे हैं, श्रीकृष्ण की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। दिव्य ज्ञान के समझने के लिए व्यक्ति को बहुत निर्मल हृदय होना चाहिए। भक्तियोग दिव्य ज्ञान की एक विस्तृत परिभाषा है जिसे नवीन साधक और पूर्ण योगी दोनों ही समझ सकते हैं।

प्राकृत संसार दिव्य संसार की एक परछाईं मात्र है और बुद्धिमान् व्यक्ति जो कि हृदय और स्वभाव से निर्मल हैं श्रीभगवद् गीता पाठ से दिव्य लोक सम्बन्धी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेंगे। वास्तव में प्राकृत विवरण से ये ज्ञान अधिक विस्तृत हैं जिनके आधारभूत विन्दु इस प्रकार हैं—

अप्राकृत लोक के इष्ट देवता अधिष्ठाता श्रीकृष्ण हैं जो कि अपने निजी स्वरूप में एवम् अपनी समस्त विभूतियों के साथ वहाँ निवास करते हैं। समस्त विभूतियों के साथ उनका पुरुषोत्तम स्वरूप उन दिव्य लीलाओं के द्वारा जाना जा सकता है जिन्हें साधारणतः भक्तियोग या साधन योग कहते हैं। परात्पर पुरुषोत्तम ही सर्वोच्च सत्य हैं और वे ही समग्र दिव्य सिद्धान्त हैं। प्राकृत व अप्राकृत दोनों सिद्धान्त ही उन्हीं की विभूति हैं जो उन्हीं से प्रादुर्भूत हैं। सम्पूर्ण वृक्ष के वे ही मूल हैं शाखा और पत्तियाँ उन्हीं के द्वारा स्वतः पोषित हैं। उसी प्रकार जब परात्पर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की पूजा होती है तो प्राकृत जगत् के समस्त विस्तार प्रकाशित हो जाते हैं और भक्त हृदय बिना प्राकृत रूप से कार्य किए हुए सम्पुष्ट हो जाता है। भगवद्गीता का यही रहस्य है।

दिव्य लोकों में प्रवेश की विधा भौतिक विधा से भिन्न है। प्रत्येक प्राणी भूलोक में रहता हुआ दिव्य लीलाओं के माध्यम से अप्राकृत लोक में तुरन्त आसानी से प्रवेश प्राप्त कर सकता है। किन्तु वे घोर भौतिकवादी जो प्रयोगात्मक विचार, मानसिक चिन्तन और भौतिक विज्ञान की सीमित शक्ति पर निर्भर करते हैं, उन्हें दिव्य लोकों में

प्रवेश पाने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। प्रकृष्ट भौतिकवादी अन्तरिक्ष में अपने द्वारा भेजे हुए यान, उपग्रह, राकेट आदि के द्वारा दिव्य लोकों में प्रवेश के लिए प्रयास कर सकता है किन्तु इन साधनों के द्वारा तो वह प्राकृत आकाश के उच्च क्षेत्रों में भी नहीं पहुँच सकता, तब उन नक्षत्रों व ग्रहों का क्या कहना जो कि भूलोक से बहुत दूरी पर स्थित हैं। यहाँ तक कि पूर्ण गुह्यवादी योगियों को भी इस लोक में प्रवेश पाना कठिन है। सिद्ध योगी जो कि गुह्य शक्तियों के निरन्तर अभ्यास से इस भौतिक शरीर में स्थित चिन्मय तत्त्व को 'कण्ट्रोल' कर लेते हैं वे स्वेच्छा से किसी भी क्षण इस पांच भौतिक शरीर को त्याग देते हैं और इस प्रकार एक निश्चित, राजमार्ग द्वारा उन दिव्य लोकों में प्रवेश करते हैं जो कि प्राकृत और अप्राकृत लोकों को जोड़ता है। यदि वे तनिक भी समर्थ हैं तो उनकी सामर्थ्य गीता में निर्दिष्ट प्रणाली के अनुसार हैं—

वे व्यक्ति जिन्होंने दिव्य चेतना प्राप्त कर ली है उत्तरायण के समय अपना पांच भौतिक शरीर छोड़कर दिव्य लोकों में प्रवेश करते हैं—अर्थात जबकि सूर्य अपनी उत्तरी यात्रा पर चलता है उन शुभ क्षणों में जब कि अग्नि एवम् प्रकाश के देवता वातावरण को नियन्त्रित रखते हैं।

(गीता, ८/२४)

विभिन्न देवता अथवा शक्तिमान् निर्देशक सृष्टि के कार्य संचालन हेतु नियुक्त किए जाते हैं। अविज्ञ जन जो कि सृष्टि नियन्त्रण की बारीकियों को देखने में असमर्थ हैं वे अग्नि, पवन, विद्युत्, दिन, रात आदि के देवताओं द्वारा संचालन सम्बन्धी विचार पर हँसते हैं। किन्तु सिद्ध पुरुष जानते हैं कि प्राकृत क्रियाओं के इन अदृश्य शासकों को कैसे तुष्ट किया जाय और कैसे इनकी सहायता से स्वेच्छा पूर्वक दिव्यलोक-प्रवेश के निश्चित क्षणों में शरीर छोड़कर सर्वोच्च लोकों को प्राप्त किया जाय। प्राकृत जगत् के उच्च ग्रहों में योगीजन अधिक सुविधापूर्ण व अधिक सुखी जीवन सहस्रों वर्षों तक व्यतीत कर सकते

हैं किन्तु उन उच्च ग्रहों में शाश्वत जीवन नहीं है। शाश्वत जीवन के इच्छुक व्यक्ति तो दैवी शासकों द्वारा निर्धारित क्षणों में गुह्य शक्तियों द्वारा दिव्य लोक में प्रवेश करते हैं। ये सृष्टि कार्य सातवीं भूमि पर रहने वाले प्रकृष्ट विज्ञान वेत्ताओं के लिए अदृश्य रहता है—

वे जो योगी नहीं हैं किन्तु तपस्या, पुण्य कर्म, त्याग व दान आदि कार्यों के कारण अनुकूल समय पर शरीर त्याग करते हैं मृत्योपरान्त उच्च लोकों में जा सकते हैं किन्तु उन्हें पुनः इस पृथ्वी पर लौटना पड़ता है। उनका प्रयाण काल कृष्ण पक्ष में धूम के समय होता है जबकि सूर्य नारायण दक्षिणायन पथ पर चलते हैं।

(गीता, ८।२५)

सारांश में, गीता के आदेशानुसार व्यक्ति को भगवद् सेवा या दिव्य लीलाओं का मार्ग ही अपनाना चाहिए यदि वह उच्च लोक की प्राप्ति करना चाहता है। कुशल चैतन्यमार्गीय विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलने वाले भगवद् परायण भक्त दिव्य लोकों में प्रवेश के लिए कभी निराश नहीं होते। यद्यपि अनेक बाधाऐं होती हैं फिर भी भगवान् कृष्ण के भक्त चैतन्य मार्गीय भक्तों द्वारा रेखाङ्कित मार्ग को दृढ़तापूर्वक अनुशीलन करते हुए उन बाधाओं को सरलता से जीत लेते हैं। ऐसे भक्त कभी भ्रमित नहीं होते जो भगवान् के दिव्य धाम के पथ-यात्री बनकर जीवन को आगे बढ़ाते हैं। किसी को कोई धोखा या निराशा नहीं होती जब वह दिव्य लोक में प्रवेश हेतु निश्चित भक्ति मार्ग को अपना लेता है। तभी वह सरलता पूर्वक उन सब संसिद्धियों को उपलब्ध कर लेता है जो कि वेदाध्ययन, बलिकार्य, तपस्या और दान आदि से प्राप्त होती हैं। तब ये समस्त उपलब्धियाँ मात्र भगवद् सेवा या भक्ति योग से ही प्राप्त हो जाती हैं।

फलस्वरूप भक्ति योग ही प्रत्येक के लिए रामबाण है और इसे विशेषतः इस कलियुग (लौह युग) में श्रीकृष्ण द्वारा बहुत सरल बनाया गया है जो कि अपने अति उत्तम दिव्य, कोमल और उदार स्वरूप में

श्रीचैतन्य देव के रूप में बंगाल में (१४८६-१५३४) अवतरित हुए और जिन्होंने सङ्कीर्त्तन क्रान्ति गाना, नृत्य करना और भगवद् नाम सङ्कीर्त्तन का सम्पूर्ण भारत में प्रचार किया। महाप्रभु की कृपा से कोई भी व्यक्ति भक्तियोग सिद्धान्त को अविलम्ब सीख सकता है। इस प्रकार अशेष मानसिक भ्रान्तियाँ दूर हो जावेंगी, भौतिक सन्ताप मिट जावेगा और जीवन में चिन्मय आनन्द उतर आवेगा।

ब्रह्मसंहिता के पाँचवें अध्याय में भूलोक के अन्तर्गत एक चित्र-विचित्र ग्रह-सम्बन्धी प्रणाली का वर्णन है। गीता में भी इस तथ्य को उद्घाटित किया गया है कि सहस्रों भूलोकों में बहुरंगी ग्रहलोक हैं और ये समस्त लोक परमेश्वर की रचनात्मक शक्ति का एक चतुर्थांश मात्र हैं। भगवान की क्रियात्मक शक्ति का अधिकतम तीन चौथाई भाग परव्योम अथवा वैकुण्ठ लोक जिसे आध्यात्मिक आकाश कहते हैं के माध्यम से उद्भासित होता है। ब्रह्मसंहिता अथवा भगवद् गीता के ये उपदेश अन्तिमरूपेण उस विज्ञानवेत्ता द्वारा सम्पुष्ट किये जा सकते हैं जो कि दिव्य लोक के अस्तित्व की खोज करता है।

अन्ततोगत्वा, २१ फरवरी १९६० के मास्को समाचार पत्र सन्देश ने बताया—

रूसी नक्षत्र विद्या के सुप्रसिद्ध आचार्य बोरिस वोरन्त्सोव वेलियनिनो ने बताया कि विश्व में मानसिक प्राणियों द्वारा आवासित अनन्त ग्रह होने चाहिए। रूसी खगोल विद्याशास्त्री का यह कथन ब्रह्म संहिता में वर्णित निम्न सूचना की पुष्टि करता है:—

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्यकोटि,
कोटिष्वशेषवसुधादि विभूति-भिन्नम्।
तद् ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतम,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

ब्रह्मसंहिता के इस उद्धरण के अनुसार रूसी खगोलवेत्ता द्वारा सम्पुष्ट अनन्त ग्रहलोक ही नहीं है वरन् अनन्त संख्या में विश्व भी

उपस्थित हैं। ये समस्त अनन्त ग्रह अपने ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तैर रहे हैं और भगवान् श्रीकृष्ण अर्थात् गोविन्द के चिन्मय चिन्मय शरीर से उद्भूत ब्रह्मतेज से उत्पन्न हुए हैं—श्रीकृष्ण ही आदि सृष्टिकर्त्ता हैं और जिनका वन्दन ब्रह्मा आदि सृष्टि कर्त्ताओं से निरन्तर हो रहा है।

रूसी खगोलवेत्ता बताता है कि समस्त ग्रह जो कि १००,०००,००० से तो कम नहीं हैं वे सब निवसित हैं। ब्रह्मसंहिता में इंगित किया गया है कि सहस्रों वर्षों पुराने हुए प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अनेक चित्र विचित्र ग्रह मौजूद हैं।

प्रो. वैल्डीमीर अल्पाटोव जीववेत्ता ने इस सिद्धान्त का समर्थन करते हुए बताया कि उपर्युक्त वर्णित कुछ ग्रह पृथ्वी के समरूप उन्नतिशील स्थिति पर पहुँच गए हैं। मास्को की रिपोर्ट ने पुन: बताया:—

ऐसा भी हो सकता है कि पृथ्वी जैसा ही जीवन उन नक्षत्रों पर भी उपस्थित हो। रसायन क्षेत्र के विद्वान डाक्टर निकोलत जिरोव ने, ग्रहों पर वातावरण सम्बन्धी समस्या को लेते हुए बताया कि मंगल ग्रह पर रहने वाला प्राणी, स्वयं को निम्न शरीर तापमान सहित सामान्य जीवन से भली भाँति जोड़ सकता है। उन्होंने कहा कि वे अनुभव कर रहे थे कि मंगल ग्रह की गैस सम्बन्धी बनावट उन प्राणियों के जीवन धारण के लिए पर्याप्त अनुकूल थी जो कि उस वातावरण से अभ्यस्त हो चले थे।

ब्रह्मसंहिता में 'विभूतिभिन्नम्' शीर्षक से प्राणियों की भिन्न-भिन्न ग्रहों में अनुकूलन-क्षमता का वर्णन किया गया है। अर्थात समस्त ब्रह्माण्ड में असंख्यों ग्रहों का प्रत्येक निवासी को एक विशेष प्रकार का वातावरण प्राप्त है और वहाँ के निवासी विज्ञान, मनोविज्ञान आदि में वातावरण की श्रेष्ठता और निम्नता के अनुसार समृद्ध हैं। "विभूति" का अर्थ है विशेष शक्ति और "भिन्नम्" का अर्थ है विभिन्न प्रकार। मशीनगत साधनों द्वारा दूसरे ग्रहों पर पहुँचने के लिए अन्वेषण करने वाले वैज्ञानिकों को यह समझना आवश्यक है कि पृथ्वी के वाता-

वरण की अनुकूलन-क्षमता-प्राप्त जीवधारी दूसरे ग्रहों वातावरण में जीवित नहीं रह सकते। परिणामतः चन्द्र, सूर्य और मंगल तक पहुँचने के लिए मानव-प्रयास सार्थक नहीं कहे जा सकते क्योंकि उन ग्रहों पर सम्प्रसारित भिन्न वातावरण उसके जीवन को सहन नहीं करेगा। इतना होने पर भी, व्यक्तिगतरूपेण कोई किसी भी ग्रह में जाने की चेष्टा कर सकता है किन्तु ऐसा तभी सम्भव है जब मानसिक रूप से मनोवैज्ञानिक अथवा यौगिक क्रिया द्वारा परिवर्त्तन हो सके। मन प्राकृत शरीर का केन्द्र बिन्दु है। प्राकृत शरीर का क्रमिक विकास मन के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक परिवर्त्तनों पर निर्भर करता है। एक कीड़े का तितली शरीर में परिवर्त्तन और आधुनिक मेडिकल विज्ञान में एक पुरुष शरीर से नारी शरीर में परिवर्त्तन अथवा इसका उलटा होना मनोवैज्ञानिक परिवर्त्तनों पर निर्भर करता है।

भगवद् गीता में कहा गया है कि यदि मनुष्य अपनी मृत्यु के समय पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण में ध्यान लगा ले और ऐसा करता हुआ अपना शरीर त्याग करे तो वह तत्काल दिव्य लोक के आध्यात्मिक वातावरण में पहुँच जाता है। तात्पर्य यह है कि कोई भी व्यक्ति सेवा मार्ग के निर्धारित नियमों का पालन कर सुविधापूर्वक दिव्यलोक के भगवद् धाम को प्राप्त कर सकता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

इसी प्रकार यदि कोई प्राकृत आकाश के किसी अन्य नक्षत्र में प्रवेश करना चाहे, तो वह इस शरीर को छोड़कर (मृत्योपरान्त) तुरन्त वहाँ जा सकता है। इस प्रकार यदि कोई चन्द्रमा, सूर्य और मंगल ग्रह पर जाना चाहे तो एतदर्थ कृत कार्यों द्वारा ही ऐसा कर सकता है। गीता इस तथ्य को इन शब्दों में पुष्ट करती है—

मृत्यु के समय व्यक्ति जिसका चिन्तन करता है उसी को वह शरीर-पात के उपरान्त प्राप्त करता है।

(गीता, ८।६)

महाराज भरत ने, महान तपस्यारत जीवन होने पर भी मृत्यु

के समय एक हिरन के विषय में सोचा और इस प्रकार मृत्योपरान्त हिरन ही बन गये। फिर भी उन्हें अपने अतीत के जीवन का स्पष्ट ध्यान रहा और इस प्रकार उन्हें अपनी भूल का बोध हुआ। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि मृत्यु के समय व्यक्ति के विचार उन वास्तविक कर्मों से प्रभावित रहते हैं जिन्हें वह जीवन भर करता है।

श्रीमद्भागवत में, चन्द्रलोक में प्रवेश की क्रिया इस प्रकार वर्णित है—

वे भौतिकवादी व्यक्ति जिन्हें भगवद् धाम के विषय में कोई जानकारी नहीं है सदैव धन, यश और ख्याति के संचय में व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार के लोग अपने ही परिवार के भरण पोषण में अपने सुख के लिए निरन्तर तत्पर रहते हैं—इसी प्रकार वे सामाजिक व राष्ट्रीय योगक्षेम में रुचि लेते रहते हैं। ये व्यक्ति भौतिक क्रियाओं द्वारा वांछित लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। वे लोग मशीन की भाँति कर्मकांडीय विधि-विधानपूर्वक शास्त्रोक्त पद्धति से हवन यज्ञादि द्वारा पितृतर्पण आदि कार्यों में विभिन्न देवताओं की प्रसन्नता हेतु निरन्तर तत्पर रहते हैं। इस प्रकार के यज्ञादि कर्मकांडों में निरत रहते हुए व्यक्ति मृत्यु के बाद चन्द्रलोक में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार चन्द्रलोक प्राप्त करने पर वह सोमरस पीने का अधिकारी हो जाता है। चन्द्रलोक वह स्थान है जहाँ चन्द्रमा अधिष्ठात्री देवता है। पृथ्वी की अपेक्षा वहाँ का वातावरण और जीवन-सुविधाए अधिक सुखदायी और लाभप्रद हैं। चन्द्रलोक पहुँच कर यदि जीवात्मा उस अवसर से लाभ उठाकर दूसरे उच्च ग्रहों में पहुँचने का प्रयास नहीं करता तो उसका पतन हो जाता है और उसे लाचार होकर पुनः पृथ्वी पर अथवा ऐसे ही निम्न ग्रहों में लौटकर आना पड़ता है। इतना होने पर भी, भौतिक प्राणी यद्यपि वे सर्वोच्च ग्रहों को प्राप्त भी कर लें तो भी प्रलय काल में उनका सर्व विनाश सुनिश्चित है।

(श्रीमद् भागवतम्, ३। ३२)

जहाँ तक आध्यात्मिक आकाश की ग्रह-प्रक्रिया का सम्बन्ध है, परव्योम में अगणित वैकुण्ठ ग्रह हैं। वैकुण्ठ नामक वे आध्यात्मिक ग्रह हैं जो कि भगवान् की आन्तरिक शक्ति के प्रत्यक्षीकरण हैं और इन ग्रहों का प्राकृत ग्रहों (बाह्य शक्ति) के साथ ४ : १ का अनुपात है। इस प्रकार अकिञ्चन भौतिकवादी उस ग्रह की राजनैतिक व्यवस्था करने में तल्लीन है जो कि भगवान् की सृष्टि में निम्नतम स्थान रखता है। इस पृथ्वी नामक ग्रह की क्या चर्चा की जाय जबकि अगणित ग्रहों से परिपूर्ण यह सम्पूर्ण विश्व नक्षत्र मण्डली सहित राई से भरे हुए थैले में राई के एक दाने के समान हैं। किन्तु अकिञ्चन भौतिकवेत्ता यहाँ सुख पूर्वक निवास करने के स्वप्न संजोता है और इस प्रकार सुनिश्चित पतनोन्मुखी वस्तु के पीछे व्यर्थ में बहुमूल्य मानव शक्ति को विनष्ट करता है। व्यावसायिक मनन में समय नष्ट करने की अपेक्षा उसके लिए अपेक्षित था कि वह सादा जीवन और उच्च आध्यात्मिक विचार के जीवन की खोज में स्वयम् को लगाता और इस प्रकार शाश्वत मानसिक क्लेश से स्वयं को बचाता।

यदि भौतिकवादी समृद्धिशील भौतिक सुविधाओं को भोगने का इच्छुक है तो वह उन ग्रहों में अपना स्थानान्तरण कर सकता है जहाँ उसे पृथ्वी की तुलना में अधिक संवर्धित भौतिक सुविधाओं का अनुभव हो सके। किन्तु सर्वोत्कृष्ट योजना तो वह है जिसमें मनुष्य देहपात के उपरान्त आध्यात्मिक आकाश (पराव्योम) में निवर्त्तन हेतु तैयारी कर सके। इस पर भी, यदि मनुष्य भौतिक सुख भोगने के लिए कटिबद्ध है तो वह यौगिक शक्तियों द्वारा स्वयं को भौतिक आकाश के अन्य ग्रहों में भेज सकता है। अन्तरिक्ष यात्रियों के क्रीड़ामय अन्तरिक्षयान केवल बालसुलभ मनोरंजन हैं और इस दिशा में उनका कोई प्रयोजन नहीं है।

अष्टाङ्ग योग प्रणाली वायु नियमन की एक प्राकृत कला मात्र है जिसके द्वारा जठर से नाभि तक, वक्ष से हँसुली तक और हँसुली से

नेत्रगोलकों तक और पुनः मस्तिष्क तक और फिर वहाँ से किसी भी इच्छित ग्रह तक वायु प्रणयन हो सकता है। वायु और प्रकाश की गति को भौतिक विज्ञानवेत्ता ध्यान में रखते हैं किन्तु उसे मस्तिष्क और बुद्धि की गति की कोई जानकारी नहीं। हमें मन की गति का तो कुछ सीमित अनुभव है क्योंकि एक ही क्षण में हम अपने मन को सैकड़ों-हजारों मील दूर भेज देते हैं। बुद्धि इससे भी अधिक सूक्ष्म है। बुद्धि से भी सूक्ष्म है आत्मा जो कि मन और बुद्धि की भाँति प्राकृत नहीं है वरन् दिव्य और अप्राकृत है। इस प्रकार हम एक ग्रह में भ्रमण करने वाली आत्मा की गति के विषय में कल्पना मात्र कर सकते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आत्मा अपनी शक्ति से स्वयम् चालक है और उसे किसी प्रकार के प्राकृत वाहन की आवश्यकता नहीं होती।

आहार, शयन, भय और मिथुन की पाशविक सभ्यतां ने आधुनिक मानव को संभ्रमित कर दिया है और वह भूल चुका है कि उसकी आत्मा कितनी शक्तिशाली है। जैसाकि कहा जा चुका है कि आत्मा एक आध्यात्मिक विस्फुलिङ्ग है जो कि सूर्य, चन्द्र और विद्युत से भी कई गुना अधिक प्रकाशमान्, देदीप्यमान् और शक्तिवान् है। मानव जीवन कुत्सित हो जाता है जबकि वह आत्मा के साथ अपना सही सम्बन्ध अनुभव नहीं करता। मानव को इस प्रकार की भ्रामक सभ्यता से बचाने के लिए महाप्रभु अपने शिष्य नित्यानन्द के साथ अवतरित हुए।

श्रीमद्भागवत में भी वर्णित है कि योगी जन ब्रह्माण्ड में स्थित अन्य ग्रहों तक कैसे भ्रमण कर सकते हैं। जब महाप्राण मस्तिष्क में अवस्थित हो जाता है तो अक्षि, नासिका और श्रवणेन्द्रियों आदि के मार्ग से जिसे सातवाँ गृहपथ कहते हैं इस शक्ति के विस्फोट होने की पूरी सम्भावना रहती है किन्तु योगीजन प्राण अवरुद्ध प्रक्रिया से इन छिद्रों को पूर्णरूपेण रोक लेते हैं। इस प्रकार योगी नासिका के मध्य भाग में महाप्राण को केन्द्रित कर लेते हैं। इसी स्थिति में योगी यह ध्यान कर लेता है कि मृत्यु के उपरान्त उसे अपनी आत्मा को किस

ग्रह में भेजना है। तब वह निश्चित कर सकता है कि वह कृष्ण के दिव्य धाम वैकुण्ठ को जाना चाहता है जहाँ से पुनरावर्त्तन नहीं होता अथवा उसे प्राकृत विश्व के उच्च ग्रहों में भ्रमण करना है। सिद्ध योगी दोनों में से कोई भी मार्ग चुन सकता है।

उस सिद्ध पुरुष के लिए जिसने पूर्ण चेतना सहित शरीर-परित्याग-प्रणाली को सिद्ध कर लिया है, एक ग्रह से दूसरे में स्थानान्तरण उतना ही सरल है जितना कि एक सामान्य व्यक्ति के लिए पँसारी की दुकान तक जाना। जैसाकि पूर्व वर्णित है, यह प्राकृत शरीर आत्मा का आवरण-मात्र है। मन और बुद्धि इसके अधो आवरण हैं और भौतिक स्थूल शरीर जो कि पृथ्वी, जल, वायु आदि पंचभूतों से निर्मित है आत्मा का ऊपर का आवरण है। इस प्रकार कोई भी संवर्धित आत्मा जिसने यौगिक प्रक्रिया से स्वयम् को जान लिया है, जो भूत और आत्मा का सम्बन्ध जानता है वह इच्छानुसार सर्वोच्च ढङ्ग से आत्मा के स्थूल चोले को छोड़ सकता है। भगवद् कृपा से हमें पूर्ण स्वतन्त्रता है। चूँकि भगवान् की हम पर कृपा है, हम कहीं भी रह सकते हैं, चाहे तो परव्योम में अथवा अपर व्योम में, चाहे किसी भी ग्रह पर। इतना होने पर भी, इस स्वातन्त्र्य का दुरुपयोग ही हमारा इस प्राकृत संसार में गिरने का कारण है जहाँ हम त्रिविध ताप को सहन करते हैं। कविवर मिल्टन ने अपने "पेराडाइज लौस्ट" में जीवात्मा के स्वेच्छ पतन से परिणमित इस पृथ्वी पर कष्टदायी मानव जीवन का विशद चित्रण किया है। इसी प्रकार, स्वेच्छा से ही जीवात्मा स्वर्ग को पुनः प्राप्त कर पुनः परमात्मा के पास पुनरावर्त्तन कर सकता है।

मृत्यु के आपद्कालीन समय में कोई भी व्यक्ति दोनों भृकुटियों के मध्य में महाप्राण को अवस्थित कर स्वेच्छित स्थान पर जा सकता है। यदि वह प्राकृत संसार से कोई भी सम्बन्ध न रखना चाहे, तो वह तत्क्षण ही दिव्य वैकुण्ठ लोक में पहुँच सकता है और वहाँ पूर्णरूपेण अपने आध्यात्मिक शरीर में रह सकता है जो कि आध्यात्मिक वातावरण

में उसके अनुकूल होगा उसे तो सूक्ष्म और भौतिक स्वरूपों में इस प्राकृत संसार के परित्याग मात्र की इच्छा करनी है और तदुपरान्त महाप्राण को मस्तिष्क के सर्वोच्च भाग में अवस्थित करते हुए अन्ततोगत्वा इसी सर्वोच्च भाग जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं के द्वारा प्राण त्याग करना है। योग में सिद्ध पुरुष के लिए यह प्रक्रिया अत्यन्त सरल है।

यथार्थतः मनुष्य स्वतन्त्र इच्छा से सम्पन्न है; परिणामतः यदि वह स्वयम् को प्राकृत संसार से मुक्त न करना चाहे तो वह ब्रह्मापद को प्राप्त कर सकता है और भौतिकतः पूर्ण सिद्ध ग्रह सिद्ध लोक के प्राणियों के दर्शन कर सकता है जिनका अन्तरिक्ष काल और गुरुत्वाकर्षण आदि पर पूर्ण अधिकार है। प्राकृत विश्व में इन उच्च लोकों के दर्शनार्थ, मन और बुद्धि (सूक्ष्म तत्त्व) को छोड़ने की आवश्यकता नहीं, केवल स्थूल पदार्थ (स्थूल शरीर) को ही छोड़ना है।

प्रत्येक ग्रह निज विशिष्ट वातावरण से सम्पन्न है और यदि कोई इस ब्रह्माण्ड में किसी विशिष्ट ग्रहलोक में भ्रमण करना चाहता है तो उसे उस ग्रह विशेष के जलवायु के साथ इस भौतिक शरीर का तालमेल करना होगा। उदाहरणार्थ, यदि कोई भारत से यूरोप जाना चाहे जहाँ की जलवायु भिन्न है तो उसे अपना वेष तदनुकूल बदलना होगा। इसी प्रकार, शरीर का पूर्ण परिवर्त्तन अपेक्षित है यदि कोई वैकुण्ठ के दिव्य लोक को जाना चाहता है। इतने पर भी यदि कोई उच्च भौतिक ग्रहों को जाना चाहता है तो वह अपनी मन, बुद्धि और अहङ्कार की सूक्ष्म पोशाक को तो रख सकता है किन्तु उसे पांचभौतिक तत्त्वों से निर्मित इस स्थूल पोशाक (शरीर) को परित्याग करना पड़ेगा।

जब कोई व्यक्ति किसी दिव्य ग्रह को जाता है तो सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीरों को बदलना अति आवश्यक है क्योंकि उसे पूर्ण आध्यात्मिक स्वरूप में पराव्योम में पहुँचना है। यदि किसी की इच्छा है तो मृत्यु के समय वेष परिवर्त्तन स्वतः हो जावेगा। किन्तु यह लालसा अल्पकाल में तभी सम्भव है जबकि इसे जीवनकाल में ही पोषित किया

जाय। जहाँ जिसका खजाना होता है, वहीं उसका मन रमण करता है। जब कोई भगवद् सेवा परायण होता है तभी उसे भगवद्-साम्राज्य-प्राप्ति की इच्छा जागृत होती है। निम्न विवरण एक सामान्य अभ्यास की वह रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं जिसके द्वारा व्यक्ति जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु से उन्मुक्त दिव्य वैकुण्ठ धाम के लिए सरल यात्रा के लिए स्वयं को तैयार कर सकता है।

सामान्य अभ्यास (निश्चित कार्य)

१— गम्भीर अभ्यर्थी को एक विश्वसनीय आध्यात्मिक गुरु की शरण में आना चाहिए ताकि वह वैज्ञानिक ढङ्ग से दीक्षित हो सके। चूँकि इन्द्रियाँ भौतिक हैं, चिन्मयता (दिव्यता) को उनके द्वारा प्राप्त करना सम्भव नहीं। अत: आध्यात्मिक गुरु के निर्देशन में निश्चित प्रणाली के अनुसार इन्द्रियों का आध्यात्मीकरण करना है।

२— जब शिष्य विश्वसनीय आध्यात्मिक गुरु का चयन कर लेता है तो उसे विधिवत् उनसे दीक्षा लेनी चाहिए। यहीं से आध्यात्मिक शिक्षा का शुभारम्भ होता है।

३— शिक्षार्थी को हर तरह से अपने आध्यात्मिक गुरु को प्रसन्न रखना चाहिए। एक विश्वसनीय गुरु ही जिसे आध्यात्म विद्या का पूर्ण ज्ञान है जिसे उन्होंने भगवद्गीता, वेदान्त, श्रीमद्भागवत, उपनिषद् आदि आध्यात्मिक शास्त्रों से सीखा है और जो एक सिद्ध पुरुष भी है और जिसने परात्पर प्रभु से साक्षात्कार भी कर लिया है, वही वह पारदर्शी माध्यम है जिसके द्वारा एक इच्छुक शिष्य वैकुण्ठ पथ पर भेजा जाता है। आध्यात्मिक गुरु पूर्णत: परितुष्ट होना चाहिए क्योंकि उसके आशीर्वाद मात्र से ही वह इस मार्ग में अद्भुत उन्नति कर सकता है।

४— वुद्धिमान् शिष्य आध्यात्मिक गुरु के सम्मुख अपने मार्ग में आई हुई अनिश्चितताओं को हटाने के लिए बुद्धि सूचक प्रश्न करता है। आध्यात्मिक गुरु अपने मनमौजी ढङ्ग से नहीं वरन् शास्त्रोक्त पद्धति के अनुसार चले हुए अनुभवी योग्य व्यक्तियों के कथनानुकूल मार्ग दिखाते हैं। इन महानुभावों का नाम तो शास्त्रों में निगदित है—तुम्हें तो इन्हें केवल अनुशीलन
नाम तो शास्त्रों में निगदित है—तुम्हें तो इन्हें केवल अनुशीलन
करना है अपने गुरु की आज्ञानुसार। आध्यात्मिक गुरु द्वारा बताए हुए मार्ग से स्खलन कभी नहीं होता।

५— अभ्यर्थी को सदैव उन महान् सन्तों के चरणचिह्नों का अनुशीलन करना चाहिए जिन्होंने मार्ग पर चलकर सफलता प्राप्त की है। इसी को जीवन लक्ष्य मानना चाहिए। उनकी कोरी नकल से भी कोई लाभ नहीं वरन् सुनिश्चित समय और परिस्थितिओं को देखते हुए उनका अनुशीलन करना चाहिए।

६— अभ्यर्थी को चाहिए कि वह प्रमाणित पुस्तकों में उपलब्ध उपदेशों को अपने स्वभाव परिवर्त्तन हेतु प्रयोग करे और भगवान् की सन्तुष्टि हेतु इन्द्रिय सुख व इन्द्रिय परित्याग दोनों से मुक्ति पाने की चेष्टा करे जैसा कि अर्जुन ने किया।

७— अभ्यर्थी को निरन्तर आध्यात्मिक वातावरण में रहना चाहिए।

८— उसे केवल स्थायित्त्व हेतु जितने धन की आवश्यकता हो उतने ही धन से संतुष्ट होना चाहिए। उसे आवश्यकता से अधिक धन एकत्रित करने की चेष्टा नहीं करना चाहिए।

९— उसे कृष्ण और शुक्ल पक्षीय एकादशी पर व्रत धारण करना चाहिए।

१०— उसे वट-वृक्ष, गौ, विद्वान् ब्राह्मण और भक्त के प्रति आदर होना चाहिए।

भगवद् भक्ति के मार्ग में ये आधारभूत चरण हैं। शनैः शनैः

नकारात्मक स्वभाव के तथ्यों को भी अङ्गीकार करना चाहिए।

११— भगवद् सेवा और सङ्कीर्त्तन करने में प्रमाद नहीं होना चाहिए।

१२— अभक्तों के साथ अत्यधिक संसर्ग नहीं होना चाहिए।

१३— उसे असंख्य शिष्यों को स्वीकार नहीं करना चाहिए। इसका आशय है कि जिसने पहले १२ तथ्यों को स्वीकार कर लिया है वह स्वयम् भी गुरु बन सकता है ठीक उस प्रकार जैसे कुछ सीमित विद्यार्थियों के साथ कक्षा में एक मानिटर बना दिया जाता है।

१४— उसे पुस्तकों के उद्धरण बताकर अपनी विद्वत्ता का अधिक प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। अन्य पुस्तकों का दिखावटी ज्ञान नहीं वरन् उसे आवश्यक पुस्तकों का ठोस ज्ञान होना चाहिए।

१५— उपर्युक्त चौदह तथ्यों का निरन्तर और सफल प्रयास अभ्यर्थी को वह बल प्रदान करेगा जिससे उसे भौतिक लाभ और हानि के बीच होने वाली महान् परीक्षाओं से जूझने में सफलता प्राप्त हो।

१६— आगे चलकर, अभ्यर्थी शोक और मोह से ग्रसित नहीं होता।

१७— वह दूसरों के धर्म का उपहास नहीं करता और न वह भगवान् की सत्ता अथवा भक्तों का उपहास करता है।

१८— वह भगवान् या उनके भक्तों का अपमान भी नहीं सहन करता है।

१९— उसे स्त्री पुरुष के संसर्ग से सम्बन्धित कथाओं में भी नहीं उलझना चाहिए और न दूसरों के परिवार से सम्बन्धित चर्चा में।

२०— उसे किसी भी प्राणी के शरीर या मन को कभी कष्ट नहीं देना चाहिए।

इन बीस तथ्यों में से पहिले तीन तथ्य गम्भीर विद्यार्थी के लिए अत्यन्त आवश्यक और अनिवार्य हैं।

एक गम्भीर विद्यार्थी को चवालीस अन्य तथ्यों का अनुशीलन भी करना आवश्यक है किन्तु महाप्रभु चैतन्य ने उनमें से केवल पाँच

को ही अति महत्वपूर्ण माना है। नागरिक जीवन की वर्त्तमान दशा को दृष्टि में रखते हुए निम्न तथ्यों का चयन किया गया है—

१— प्रत्येक व्यक्ति को भक्तों का सत्सङ्ग करना चाहिए और भक्तों का सत्सङ्ग तभी हो सकता है जब कि उन्हें ध्यान पूर्वक सुना जाय, उनसे महत्वपूर्ण प्रश्न किए जाँय, उन्हें भोजन करायां जाय; उनसे प्रसाद ग्रहण किया जाय, उन्हें दान दिया जाय और उनकी दी हुई प्रत्येक वस्तु ग्रहण की जाय।

२— प्रत्येक परिस्थिति में भगंवद् नाम का सङ्कीर्त्तन करना चाहिएं। भगवद् नाम-सङ्कीर्त्तन भंगवद् साक्षात्कार का एक सरल और सस्ता माध्यम है। किसी भी समय कोई प्रभु के अगणित नाम उच्चारण कर सकता है। व्यक्ति को अपराध से बचना चाहिए। नाम सङ्कीर्त्तन के समय साधक दस प्रकार के अपराध कर सकता है और इनसे अधिक से अधिक बचना चाहिए। प्रत्येक परिस्थिति में प्रभु के नाम सङ्कीर्त्तन का अभ्यास करना चाहिए। महाप्रभु चैतन्य ने षोडष अक्षरीय महामन्त्र को इस कलियुग में वैकुण्ठ लोक की दिव्य भूमि-प्राप्ति का अमोघ साधन बताया है। इस षोडष मन्त्रीय सङ्कीर्त्तन में केवल तीन ही अक्षरों का प्रयोग हुआ है—हरे, कृष्ण और राम। हरे का तात्त्पर्य है भगवान् की शक्ति जो कि एक प्रकार का इस शक्ति का सम्बोधन मात्र है। कृष्ण और राम स्वयं प्रभु के नाम हैं। महामन्त्र—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

का गान, सङ्कीर्त्तन एवम् उच्चारण माला पर भी किया जा सकता है।

३— भागवद् में उपदिष्ट दिव्य विषयों को सुनना चाहिए। यह श्रवण विश्वसनीय आचार्यों एवम् गीता के प्रमाणित अनुवादों द्वारा सम्भव है।

४— भगवान् कृष्ण की जन्म भूमि मथुरा में एतदर्थ निवास सर्वश्रेष्ठ है। अथवा गुरु द्वारा दीक्षित परिवार के सदस्यों को भगवान् की मूर्ति प्रतिष्ठापित कर अपने गृह को मथुरा की भाँति पवित्र बनाना चाहिए।

५— प्रतिष्ठित विग्रह का पूजन ऐसी श्रद्धा और निष्ठा से करना चाहिए कि समस्त वातावरण वैकुण्ठ धाम की प्रतिमूर्ति प्रतिबिम्बित कर सके। दिव्य ज्ञान से विभूषित आध्यात्मिक आचार्य के आदेशों का अनुशीलन करने से यह उपलब्धि सम्भव है।

उपर्युक्त पाँच बातें किसी भी व्यक्ति द्वारा संसार के किसी भी कोने में प्राप्त हो सकती हैं। इस प्रकार महाप्रभु चैतन्य जैसी विभूतियों के बताए हुए सरल मार्ग के अनुशीलन से व्यक्ति भगवान् की ओर पुनः मुड़ सकता है। जो पतित उद्धारण हेतु इस संसार में अवतरित हुए।

इस विषय की विशिष्ट जानकारी हेतु रूप गोस्वामी की 'भक्ति रसामृतसिन्धु' कृष्णदास की 'चैतन्य चरितामृत' तथा 'श्रीमद्भगवद् गीता' का अध्ययन करना चाहिए।

आध्यात्मिक व्योम में स्वयम् को स्थानान्तरण करने की समस्त प्रक्रिया में जीवात्मा की स्थूल तथा सूक्ष्म पर्तों के भौतिक तत्त्वों का अनावरण अन्तर्हित है।

उपर्युक्त भक्तिपरक पाँच तथ्य आध्यात्मिक रूपेण इतने शक्तिशाली हैं कि प्राथमिक अवस्था का अनुशीलन भी अति शीघ्रता पूर्वक भक्त को भाव (भगवद् प्रेम की पहली अवस्था) की सीमा तक पहुँचा है जो कि मानसिक प्रक्रियाओं से दिव्यतर है। भाव की पूर्ण रसता अथवा प्रभु प्रेम मनुष्य को भौतिक शरीर से आध्यात्मिक व्योम में पहुँचा देता है। प्रभु प्रेम की संसिद्धि ही भक्त को वस्तुतः आध्यात्मिक स्तर पर ले जाती है यद्यपि वह उस समय स्थूल शरीर भी रखता है। उस समय वह उस लोहे की लाल छड़ी के समान व्यवहार करता है जो

अग्नि के सम्पर्क से लोहा नहीं किन्तु अग्निवत् व्यवहार करती है। ये बातें भगवान् की गुह्य एवम् अतर्क्य शक्ति द्वारा सम्भव होती हैं जिसको नापने की सामर्थ्य विज्ञान में नहीं है। अत: पूर्ण श्रद्धा के साथ भक्ति-परक चेष्टाओं में निरत होकर अपने विश्वास को दृढ़ बनाने का प्रयास करना चाहिए। भगवान् के सच्चे भक्तों का व्यक्तिगत सत्सङ्ग (यदि हो सके) अथवा उनका मनन चिन्तन सतत् करना अभीप्सित है। इस सत्सङ्ग द्वारा विशुद्ध भक्ति सेवा भावाभिवृद्धि में सहायता मिलेगी जिसके द्वारा विद्युत् प्रकाश सम समस्त भौतिक भ्रान्तियाँ दूर हो जावेंगी। आध्यात्मिक अनुभूति की ये विभिन्न दशाओं को भक्त स्वयम् अनुभव करेगा जिससे उसे इस बात का दृढ़ विश्वास हो जायगा कि वह परा व्योम की ओर निश्चित उन्नति कर रहा है। इस प्रकार वह भगवान् और उनके धाम के प्रति निष्ठा पूर्वक आसक्त हो जावेगा—ऐसा ही है यह अनवरत वृद्धि प्राप्त विकास शील प्रभु प्रेम जो कि मानव जीवन के लिए सर्वाङ्ग उपयोगी है।

साधकों, सिद्धों और सम्राटों के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो कि इस प्रक्रिया के द्वारा उनकी सिद्धियों की चर्चा करते हैं। से कतिपय व्यक्तियों ने तो भक्ति परक मात्र एक ही बात श्रद्धा और लगन पूर्वक अनुरक्त होकर सफलता प्राप्त की है। इन महापुरुषों में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं:—

१— महाराज परीक्षित ने तो केवल श्रीशुकदेव गोस्वामी जैसे आचार्य से श्रवण कर आत्मोपलब्धि कर ली।

२— श्रीशुकदेव गोस्वामी ने उसी को अपने महान् पिता श्रीव्यासदेव से प्राप्त नाम जप द्वारा उपलब्ध कर लिया।

३— महाराज प्रह्लाद ने महामुनि नारद द्वारा प्रदत्त आदेशानुसार प्रभु का अनवरत स्मरण कर आध्यात्मिक सफलता प्राप्त की।

४— भाग्य की देवी, श्रीलक्ष्मी जी ने प्रभु के पादपद्मों की सेवा में बैठकर ही सफलता प्राप्त कर ली।

५— राजा पृथु ने मात्र हरि स्मरण से ही विजय प्राप्त की।

६— अक्रूर रथ सारथी ने केवल हरि-स्तवन करके ही सफलता प्राप्त की।

७— हनुमान (महावीर) श्रीरामचन्द्र के प्रसिद्ध अति मानव भक्त को प्रभु आज्ञा पालन से ही सफलता प्राप्त हुई।

८— वीर योद्धा अर्जुन ने वह सिद्धि उन प्रभु से साख्य भाव मान कर ही प्राप्त कर ली जिन भगवान् ने अर्जुन व उसके साथियों को गीता ज्ञान द्वारा उपदिष्ट किया।

९— राजा बलि ने अपने शरीर सहित अशेष वस्तु समर्पण द्वारा ही साफल्य प्राप्त किया—

इस प्रकार भगवद् सेवा के ये नौ बिन्दु हैं। कोई भी साधक इनमें केसे एक, दो, तीन, चार या सब अपनी रुचि के अनुसार चयन कर सकता गहै। पूर्ण के प्रति की गई सभी सेवाऐं पूर्ण होती हैं। आध्यात्मिक स्तर पर किसी में कोई तात्त्विक विभेद नहीं। आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रत्येक वस्तु प्रत्येक अन्य के समानान्तर होती है यद्यपि चिन्मय विविध-पूर्णता(*Transcendental Vaitegatedness*)सर्वथा उपस्थित है। राजा अम्बरीष ने उपर्युक्त नौ तत्त्वों का अनुशीलन कर पूर्ण सिद्धि प्राप्त की। वह ऐसे भक्त थे जिन्होंने अपने मन को प्रभु के पादपद्मों के स्मरण में लगाया, अपनी वाणी को साफ करने में, कानों को भगवान् कृष्ण के उपदेशों के सविनय श्रवण में, नेत्रों को प्रभु की झाँकी देखने में, अपने शरीर को भक्तों के शरीर-स्पर्श में, अपनी नासिका को प्रभु के प्रति समर्पित पुष्पों के गन्धपान में, अपनी रसना को प्रभु प्रसाद के रसास्वादन में, अपने पैरों को देवालय-दर्शन में और पूर्णतः निर्लिप्त होकर अपनी समस्त संजीवनी शक्ति को हरि सेवा में अर्पित कर दिया। इन सम्पूर्ण क्रियाओं के द्वारा उन्होंने आध्यात्मिक जीवन के उस अन्यून स्तर को प्राप्त किया जो कि भौतिक विज्ञान के सम्पूर्ण कौशल को परास्त कर देतां है।

परिणामतः मानव जीवन की संसिद्धि हेतु आध्यात्मिक अनुभूति

के इन सिद्धान्तों को ग्रहण करना प्रत्येक मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक है। आध्यात्मिक अनुभूति ही मानव जीवन की एकमात्र सार्थकता है। दुर्भाग्यवश आधुनिक युग में मानव समाज राष्ट्रीय दायित्वों के अनुशीलन में अत्यधिक व्यस्त है। वस्तुतः, राष्ट्रीय दायित्त्व, सामाजिक दायित्त्व और मानवीय दायित्त्व सभी उन व्यक्तियों के लिए वाध्य हैं जो कि अध्यात्मिक दायित्त्वों से वंचित हैं। जन्म लेते ही मनुष्य न केवल राष्ट्रीय, सामाजिक या मानवीय दायित्त्वों से ही बँधता है वरन् वह पवन, प्रकाश, जलादि देने वाले देवताओं के प्रति भी ऋणी हो जाता है। उसका कर्त्तव्य उन महान् ऋषियों के प्रति भी होता है जो उसके निर्देशन हेतु ज्ञान के अनन्त भण्डार को अपने पीछ छोड़ जाते हैं। सब प्रकार के प्राणियों, अपने पूर्वजों, पारिवारिक सदस्यों आदि के प्रति भी उसका दायित्त्व होता है। किन्तु ज्योंही वह अपने को एकमात्र कर्त्तव्य, आध्यात्मिक संसिद्धि, में रत कर लेता है, वैसे ही वह तद् तद् दिशा में, प्रयत्न किये बिना ही अपने आप समस्त दायित्त्वों को चुका देता है।

भगवद् भक्त समाज के लिए कभी भी विघ्नकारी नहीं होता—वरन् वह तो महती सामाजिक धरोहर है। चूँकि कोई भी सच्चा भगवद् भक्त किसी भी विकार के प्रति आसक्त नहीं होता, वह निजी आत्मिक शुद्धि के कारण समाज के लौकिक एवम् पारलौकिक कल्याण और शान्ति हेतु निःस्वार्थ सेवा कर सकता है। यहाँ तक कि यदि भक्त त्रुटि करता है तो प्रभु स्वयम् अविलम्ब ही उसका निवारण कर देते हैं। यह आवश्यक नहीं कि भक्त सब कुछ त्याग कर सन्यासी जीवन व्यतीत करे। वह किसी भी आश्रम में रहकर घर में ही भक्ति परक चेष्टाओं को सहज भाव से कर सकता है। इतिहास साक्षी है कि कितने ही कठोर हृदय भगवद् सेवा मात्र से कोमल बन गए हैं।

बिना कठोर परिश्रम के सच्चे भक्त के जीवन में ज्ञान व निम्न मार्ग का परित्याग स्वतः स्फुरित होता है।

भगवद् भक्ति की यह आध्यात्मिक कला और विज्ञान सम्पूर्ण संसार को भारतीय सन्तों का परमोत्कृष्ट दान है। भगवद् साक्षात्कार के इच्छुक व्यक्तियों का यह दायित्त्व है कि वे इस महान कला और विज्ञान के सिद्धान्तों को अपना कर अपना जीवन सम्पूर्ण करें और तदुपरान्त उस शेष संसार को प्रदान करें जो कि अभी भी जीवन के परम् लक्ष्य के विषय में अज्ञानी है। ज्ञान के क्रमिक विकास द्वारा इस पूर्ण अवस्था की उपलब्धि ही मानव समाज का भाग्य है। भारतीय सन्त इस श्रेणी को प्राप्त कर चुके हैं। फिर क्यों अन्य लोग इस उच्चतम अवस्था की प्राप्ति हेतु सहस्रों-सहस्रों वर्षों की प्रतीक्षा करें? क्यों न अविलम्ब ही उन्हें क्रम बद्ध रूप से यह सूचना दी जाय ताकि वे समय और शक्ति की बचत कर सकें? उन्हें उस जीवन का लाभ उठाना चाहिए जिसकी प्राप्ति के लिए शायद उन्हें लाखों वर्ष परिश्रम करना पड़े।

अब एक रूसी कथाकार अपने सुझावों द्वारा विश्व को समझा रहा है कि वैज्ञानिक उन्नति सदैव जीवित रहने की दिशा में मनुष्य की सहायता कर सकती है। स्पष्टतः वह परमेश्वर जो कि सृष्टा है, विश्वास नहीं करता। जैसा कि कहा है कि प्रत्येक जीवित प्राणी स्वरूप में शाश्वत है किन्तु उसे अपना वाह्य स्थूल व सूक्ष्म वेष बदलना पड़ता है और इसी परिवर्त्तन क्रम को परिभाषानुसार जन्म और मृत्यु कहते हैं। जब तक प्राणी को भौतिक बन्धन का बोझ उठाना पड़ता है तब तक वह उस आवागमन से मुक्त नहीं जो कि भौतिक जीवन की सर्वोत्कृष्ट अवस्थाओं तक में जारी रहता है। रूसी कथाकार समस्त कथाकारों की भाँति यह विचार कर सकता है किन्तु अल्प प्रकृत ज्ञान-वाले विद्वान् जन भी इस बात से सहमत नहीं होंगे कि मनुष्य इस प्राकृत संसार के अन्तर्गत सदा स्थित रह सकता है।

फल के एक टुकड़े के अध्ययनमात्र से ही एक प्रकृतिवादी भौतिक प्रकृति की सामान्य प्रक्रिया को जान सकता है। एक छोटा फल एक फूल से जन्म लेता है, बढ़ता है, किसी एक शाखा पर कुछ काल के लिए

ढिकता है, पूर्ण विकसित होकर पकता है और फिर नित्य झड़ता है और अन्ततोगत्वा वृक्ष से पतित होकर पृथ्वी पर गिरकर सड़ने लगता लगता है और अन्त में अपने पीछे उस बीज को छोड़कर धूल में मिल जाता है जो क्रमिक रूपेण समय आने पर वृक्ष बन कर अनेक फलों को जन्भ देता है जो सब भी उसी भाग्य के भागी होते हैं आदि आदि।

इसी प्रकार एक प्राणी (भगवान् के अंश स्फुलिङ्ग की भाँति) सम्भोग के उपरान्त ही अपनी माँ के गर्भ में आ जाता है। वहाँ पर वह क्रमशः बढ़ता है, जन्म लेता है और तदुपरान्त बढ़ते-बढ़ते शिशु, बालक, युवा, प्रौढ़, वृद्ध बनकर अन्ततोगत्वा मृत्यु को प्राप्त होता है, कथाकार चाहे कितने भी सद्भावनाऐं अथवा स्वप्न संजोकर रखें। तुलनात्मक दृष्टि से मनुष्य और फल में कोई अन्तर नहीं है। फल की भाँति ही, मनुष्य अपने पीछे बीजरूप में अनेक बच्चों को छोड़ दे सकता है किन्तु इस प्राकृत शरीर में शाश्वतरूप से वह कदापि नहीं रह सकता क्योंकि भौतिक प्रकृति का नियम यही है।

भौतिक प्रकृति के नियम का उल्लङ्घन व्यक्ति कैसे कर सकता है? चाहे कोई कितनी भी डींग मारे, कोई भी भौतिक वैज्ञानिक प्रकृति के कठोर नियमों का उल्लङ्घन नहीं कर सकता। कोई भी खगोलवेत्ता या वैज्ञानिक ग्रहों के मार्ग को नहीं बदल सकता—वह केवल तुच्छ गृह खिलौने के रूप में निर्माण कर सकता है जिसे वह उपग्रह की संज्ञा देता है। अज्ञ बालक इससे प्रभावित होकर स्पुत्निक उपग्रह आदि के आविष्कारों को अतिशय गौरव प्रदान कर सकता है किन्तु बुद्धिमान् जन सदा उस निर्माता को अधिक ख्याति प्रदान करते हैं। जिसने सूर्य, तारागण और ग्रहों जैसे भीमकाय उपग्रह बनाए जिनकी सीमा जानना भौतिक वैज्ञानिक के लिए बहुत कठिन है। यदि छोटे खिलौने जैसे उपग्रह का सृष्टा रूस या अमरीका में है तो स्पष्ट है कि भीमकाय उपग्रहों का सृष्टा आध्यात्मिक आकाश में होगा। यदि खिलौने जैसे उपग्रह को अपने निर्माण व संचालन हेतु इतने वैज्ञानिक मस्तिष्कों

की आवश्यकता होती है तो ताराओं की आकाश गङ्गा के निर्माण व संचालन हेतु किस प्रकार के सूक्ष्म व अन्यून मस्तिष्क की अपेक्षा होगी ? इसका उत्तर अभी तक कोई भी अनीश्वरवादी नहीं दे पाया है।

नास्तिक लोग बहुधा इस प्रकार के वक्तव्य किया करते हैं "इसे जानना बड़ा कठिन है, हम कल्पना नहीं कर सकते, लेकिन यह सम्भव है" "यह अविचारणीय है" आदि आदि। इसका केवल तात्पर्य यह है कि उनकी सूचना निराधार है जो कि वैज्ञानिक गणनाओं से सम्पुष्ट नहीं है। वे केवल मनन करते हैं। इतना होने पर भी प्रमाणित सूचना भगवद् गीता में उपलब्ध है। उदाहरणार्थ, गीता बताती है कि इस भौतिक संसार में जीवित प्राणी हैं जिनका जीवन काल ४,३००,०००× १,०००×२×३०×१२×१०० सौर वर्ष है। हम गीता को प्रमाण मानते हैं क्योंकि इस ज्ञान पुस्तक को भारत के महान् सन्त जैसे शंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमरध्वाचार्य, श्रीचैतन्य महाप्रभु आदि ने अपनाया। गीता इंगित करती है कि भौतिक संसार में सभी निर्मित पदार्थ जीवन काल को बिना ध्यान में रक्खे हुए नाश एवम् मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

अत: सभी प्राकृत स्वरूप परिवर्त्तनशील हैं यद्यपि सम्भाव्यरूपेण भौतिक शक्ति सुरक्षित रहती है। शक्यात्मक दृष्टिकोण से प्रत्येक वस्तु सनातन है किन्तु भौतिक संसार में पदार्थ स्वरूप बदलता है, कुछ समय तक स्थित रहता है, परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है, वृद्ध होता है, क्षीण होने लगता है और अन्त में अन्तर्धान हो जाता है। यही दशा सभी भौतिक पदार्थों की होती है। भौतिकवादी का यह सुझाव कि प्राकृत व्योम के परे कुछ और स्वरूप है जो कि दृष्टि की सीमा में नहीं आ सकता और जो अनोखा एवम् अचिन्त्य है वह सब कुछ आध्यात्मिक आकाश (पराव्योम) का ही धुँधला चिह्न है। किन्तु, आत्मा का आधारभूत सिद्धान्त बहुत निकट है क्योंकि यह सभी जीवात्माओं में संक्रमण करता है। जब यह आध्यात्मिक सिद्धान्त

भौतिक शरीर से अलग हो जाता है, तब प्राकृत शरीर का प्राणान्त हो जाता है। एक शिशु के शरीर में, उदाहरणार्थ, आध्यात्मिक सिद्धान्त वर्त्तमान है और इसी कारण से शरीर में परिवर्त्तन होते हैं और वह बढ़ता है। किन्तु यदि आत्मा शरीर को त्याग दे, संवर्धन रुक जाता है। यह सिद्धान्त प्रत्येक भौतिक वस्तु पर घटित होता है। पदार्थ एक स्वरूप से दूसरे में परिवर्त्तित होता है जब वह आत्मा के सम्पर्क में आता है। आत्मा के बिना परिवर्त्तन सम्भव ही नहीं। सम्पूर्ण विश्व इसी प्रकार बढ़ता है। श्रीकृष्ण भगवान् की दिव्य शक्ति से ही उद्भूत यह सारा विश्व है और वही सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि महत् रूपों में संवर्धित होती है। ग्रह प्रणाली के चौदह भाग हैं और यद्यपि वे गुण और आकार में एक दूसरे से भिन्न हैं फिर भी संवर्धन प्रक्रिया में वही सिद्धान्त सिद्ध होता है। आध्यात्मिक शक्ति ही सृष्टा है और इसी आध्यात्मिक सिद्धान्त मात्र के द्वारा रूपान्तर, परिवर्त्तन एवम् संवर्धन होता है।

जैसा कि अनेक मूर्ख लोग साधिकार कहते हैं जीवन शैली निश्चय-रूप से केवल रासायनिक मिलावट के समान किसी प्राकृत प्रतिक्रिया से नहीं बनी है। किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के द्वारा भौतिक संघर्षण गतिमान रहता है—यही शक्ति आध्यात्मिक जीवात्मा को धारण करने के लिए अनुकूल वातावरण का सृजन करती है। परात्पर शक्ति परमेश्वर की स्वेच्छानुसार निर्धारित नियमन के द्वारा पदार्थ को क्रियान्वित करती है। उदाहरणस्वरूप, निर्माण सम्बन्धी पदार्थ स्वत: क्रिया नहीं करते और अचानक ही आवास भवन का रूप ग्रहण नहीं करते। जीवनधारी व्यक्ति अपनी स्वेच्छा से पदार्थ को ठीक ठीक संचालित करता है और इस प्रकार भवन का निर्माण होता है। इसी प्रकार पदार्थ तो एक तत्त्व मात्र है किन्तु आत्मा सृष्टा है। केवल एक अल्पात्मक बुद्धि का व्यक्ति ही इस निर्णय को नकार सकता है। भौतिक विश्व के वृहद् स्वरूप को देखकर ही किसी को भ्रमित नहीं होना चाहिए।

वरन् इन सब प्राकृत अनावरण के तीछे व्यक्ति को श्रेष्ठतम बुद्धि के अस्तित्व को देखना चाहिए। परात्पर पुरुषोत्तम ही जो कि सर्वश्रेष्ठ बुद्धि है परसृष्टा हैं, वे ही इष्ट श्रीकृष्ण के रूप में सर्वाकर्षक व्यक्तित्व हैं। यद्यपि किसी को इसकी जानकारी न हो किन्तु श्रीमद्भगवद् गीता, विशिष्टत: श्रीमद्भागवत् जैसे वैदिक ग्रन्थों में इस सृष्टा का निश्चयात्मक ज्ञान है। गीता स्पष्टत: अस्वीकार करती है कि जीवन केवल "कुछ शारीरिक और रासायनिक संयोजन का सौभाग्यशाली परिणाम है।"

हे अर्जुन ! युगोपरान्त समस्त भूत मेरी ही प्रकृति को प्राप्त होते हैं और दूसरे युग के आरम्भ में मैं उन्हें उत्पन्न करता हूँ—अपनी ही प्रकृति के सहारे मैं इन अनन्त प्राणियों को पुन: पुन: भेजता हूँ जो कि प्रकृति के अनुशासन में रह कर असहाय हो गये हैं। मेरे ही निर्देश के अनुसार प्रकृति चल और अचल सभी को जन्म देती है और इस प्रकार, ओ अर्जुन ! संसार घूमता रहता है। (गीता, IX/7–8, 10)

इन शब्दों द्वारा श्रीकृष्ण स्वयम् को पूर्ण विधाता मानते हैं।

जब कोई उपग्रह अन्तरिक्ष में भेजा जाता है, एक बालक यह नहीं समझ पाता है कि उसके पीछे वैज्ञानिक मस्तिष्क काम कर रहे हैं किन्तु विज्ञ वयस्क जानता है कि पृथ्वी पर बैठे वैज्ञानिक मस्तिष्क ही उपग्रह को सम्हाल रहे हैं। इसी प्रकार बुद्धिमानों को सृष्टि कर्त्ता और उसके धाम का ज्ञान नहीं होता जो कि हमारी दृष्टि से बहुत दूर है किन्तु वस्तुत: आध्यात्मिक व्योम आध्यात्मिक उपग्रह भौतिक व्योम के नक्षत्रों से गुण और संख्या में बहुत बड़े हैं। गीता में कहा है कि प्राकृत विश्व समस्त सृष्टि का चतुर्थांश मात्र है। ऐसा कथन श्रीमद्-भगवद् और दूसरे वैदिक साहित्यों में प्रकर्षरूपेण पाया जाता है।

यदि वैज्ञानिक वेधशाला में कुछ भौतिकी एवम् रासायनिक प्रयोगों के संघर्षण से जीवन्त शक्ति पैदा हो सकती है तो ये आत्म-स्तुति करने वाले भौतिक पुजारी क्यों नहीं अब तक जीवन का निर्माण कर पाए। उन्हें यह जानना अतीव आवश्यक है कि आध्यात्मिक

शक्ति प्राकृत पदार्थ से नितान्त भिन्न होती है, और किसी भी ऐसे भौतिक जोड़-तोड़ से ऐसी शक्ति उत्पन्न करना सम्भव नहीं है। आधुनिक युग में रूसी और अमरीकन लोग तकनीकी विज्ञान के कई विभागों में बहुत बढ़े-चढ़े हैं किन्तु आध्यात्मिक विज्ञान के क्षेत्र में वे पूर्णतः अज्ञानी हैं। उन्हें पूर्ण एवम् समृद्धशाली समाज बनाने के लिए श्रेष्ठतम बुद्धि से ज्ञान लेना पड़ेगा।

रूसियों को इस बात का कोई ज्ञान नहीं है कि श्रीमद्भागवत में सामाजिक दर्शन सम्पूर्ण कौशल सहित वर्णित है। भागवत का उपदेश है कि जितनी भी सम्पत्ति है—सभी प्राकृत स्रोत (कृषि, खानादि)—भगवान द्वारा सृजित हैं, परिणामतः प्रत्येक जीवित प्राणी को उसमें भाग लेने का अधिकार है। आगे कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को उतना ही धन स्वीकार करना चाहिए जितना उसके शरीर धारण हेतु पर्याप्त है। और यदि उसे अधिक धन की आवश्यकता है अथवा वह अपने हिस्से से अधिक ले लेता है तो वह दण्डनीय है। यह भी कहा गया है कि अपने बच्चों की भाँति ही जानवरों के साथ व्यवहार करना चाहिए।

हमारा विश्वास है कि इस भूलोक पर स्थित कोई भी राष्ट्र समाजवाद को इतना सुस्पष्ट वर्णित नहीं कर सकता जैसा कि श्रीमद्-भागवत में किया गया है। मानवेतर प्राणियों के साथ भाइयों एवम् बच्चों जैसा व्यवहार तभी सम्भव है जबकि स्रष्टा एवम् जीवात्मा के विषय में पूर्ण ज्ञान हो।

केवल आध्यात्मिक जगत् में ही मनुष्य के अमरत्व की प्यास बुझ सकती है। जैसा कि इस लेख के आरम्भ में वर्णित है, शाश्वत जीवन की माँग सुप्त आध्यात्मिक जीवन का ही प्रतीक है। मानव सभ्यता का लक्ष्य उसी बिन्दु पर केन्द्रित होना चाहिए। प्रत्येक प्राणी के लिए सम्भव है कि वह स्वयम् को यहाँ वर्णित भक्ति योग के माध्यम से उस आध्यात्मिक साम्राज्य में प्रविष्ट कर सकता है। यह एक बहुत

वृहद विज्ञान है और भारत भूमि ने पूर्ण जीवन की संसिद्धि हेतु अनेक वैज्ञानिक ग्रन्थों का सृजन किया है।

भक्तियोग मानव का शाश्वत धर्म है। ऐसे समय में जब कि भौतिक विज्ञान सभी विषयों पर हावी है, धर्म सिद्धान्तों सहित—यह बड़ा उत्साहवर्धक होगा कि मनुष्य के शाश्वत् धर्म-सिद्धान्तों को हम आधुनिक वैज्ञानिक की दृष्टि से देखें। यहाँ तक कि डा. एस. राधाकृष्णन् न सर्व धर्म सम्मेलन में यह स्वीकार कर लिया कि आधुनिक सभ्यता में धर्म का कोई भी स्थान न होगा यदि उसे विज्ञान स्वीकार नहीं करता है। इसके उत्तर में, सत्य प्रेमियों से यह घोषणा करते हुए हमें हर्ष है कि भक्तियोग संसार का सनातन धर्म है जिसे भगवान से सनातन सम्बन्ध रखने वाले सभी प्राणियों के लिए बनाया गया है।

श्रीरामानुजाचार्य 'सनातन' शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं, 'वह शब्द जिसका कोई आदि और अन्त न हो।' जब हम सनातन-धर्म की बात करते हैं, हम इस परिभाषा को प्रमाणित मानते हैं। आदि और अन्त रहित यह धर्म उन सबसे भिन्न है जो कि सीमाओं से बँधे हुए हैं। आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में हमारे लिए यह सम्भव होगा कि हम संसार के समस्त व्यक्तियों—बल्कि विश्व के सम्पूर्ण प्राण धारियों के लिए भक्तियोग को उनके मुख्य आचरण के रूप में देखें। मानव के इतिहास के आरम्भ में असनातन धर्मों का कुछ योगदान हो सकता है, किन्तु सनातन धर्म का तो कोई ऐतिहासिक श्रीगणेश ही नहीं, क्योंकि यह जीवात्माओं के साथ सनातन रूप से रहता है।

जब व्यक्ति हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बुद्ध या किसी अन्य विशिष्ट धर्म से संयुक्त होने की बात कहता है और जब वह जन्मादि से सम्बन्धित किसी-किसी विशिष्ट समय और परिस्थिति को इङ्गित करता है तो ऐसी उपाधियों को असनातन धर्म कहते हैं। एक हिन्दू एक मुसलमान हो सकता है अथवा एक मुसलमान एक हिन्दू या ईसाई बन सकता है, आदि आदि। किन्तु सभी परिस्थितियों में एक तत्त्व अनवरत है।

सभी परिस्थितियों में वह दूसरों की सेवा कर रहा है। एक हिन्दू, मुसलमान, बुद्ध या ईसाई सभी परिस्थितियों में किसी न किसी का दास है। किसी विशिष्ट प्रकार का सिखाया हुआ मत सनातन धर्म नहीं है। सनातन धर्म तो जीवात्मा का शाश्वत साथी है, सभी धर्मों का संयोजक। सनातन धर्म तो सेवा धर्म है।

भगवद् गीता में सनातन धर्म के अनेक प्रसङ्ग आए हैं। हमें चाहिए कि हम इस प्रमाणित ग्रन्थ से सनातन धर्म का मूल्य सीखें।

गीता के सातवें अध्याय के दसवें श्लोक में 'सनातनम्' शब्द की ओर इङ्गित किया है जिसमें भगवान् कहते हैं कि वे प्रत्येक वस्तु के सनातन स्रोत हैं और इसीलिए "सनातन" हैं। उपनिषद् में प्रत्येक वस्तु का स्रोत पूर्ण कहा गया है। यद्यपि इस 'स्रोत' की अनेक विभूतियाँ स्वयम् भी पूर्ण हैं, सनातन स्रोत गुण और मात्रा में अल्प नहीं होता। यह इसलिए कि सनातन की प्रकृति अपरिवर्त्तनीय है। कोई भी वस्तु जो काल और परिस्थिति वश बदल जाती है वह सनातन नहीं है। अतः कोई भी वस्तु जो किसी भी स्वरूप या गुण में बदल जाती है, उसे सनातन नहीं माना जा सकता। कभी सृजन न होने वाला पदार्थ स्वरूप और गुण में कभी बदलता नहीं, यद्यपि वह प्रत्येक पदार्थ का मूल स्रोत है।

भगवान् दृढ़ता पूर्वक कहते हैं कि वे समस्त प्राणधारियों के जनक हैं। उनका दावा है कि समस्त जीवधारी—चाहे वे कोई भी क्यों न हों—उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं। परिणामतः भगवद् गीता प्रत्येक के लिए है। गीता में भगवान् के इस सनातन स्वरूप की जानकारी दी गई है। उनके धाम की भी चर्चा की गई है, जो भौतिक आकाश से बहुत दूर प्राणियों के सनातन स्वभाव वाला है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण भी हमें यह बताते हैं कि यह भौतिक संसार जन्म, वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के रूप में दुःखों से आक्रान्त है। ब्रह्मलोक नामक सर्वश्रेष्ठ ग्रह में भी ये दुःख उपस्थित हैं। केवल

उनके धाम में ही दु:ख का सम्पूर्ण अभाव है। उस धाम में सूर्य, चन्द्र और अग्नि से प्रकाश लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। ग्रह स्वयम्–प्रकाश हैं। वहाँ जीवन शाश्वत एवम् ज्ञान व आनन्द से परिपूर्ण है। इसी को 'सनातन धाम' कहते हैं। अत: यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि जीवधारियों को अपने घर, निज इष्ट धाम में, सनातन लोक में सनातन पुरुष पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के साथ जीवन का आनन्द लेने के लिए अपने घर इष्ट लोक में वापिस लौटना चाहिए। प्राकृत अस्तित्व के इस दु:खदायी लोक में सड़ने के लिए यहाँ उन्हें नहीं रहना चाहिए। ब्रह्मलोक जैसे प्राकृत लोक में भी कोई सुख नहीं। अत: प्राकृत जगत् के अन्तर्गत उच्चतर ग्रहों में ऊर्ध्वगमन सम्बन्धी योजनाओं एवम् क्रियाओं का सम्पादन वे अल्पबुद्धि लोग करते हैं, जो ऊर्ध्व-देवता किन्नरों आदि की शरण में जाते हैं और केवल अल्प काल के लिए लाभ प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रकार उनके धार्मिक सिद्धान्त और उनसे प्राप्त लाभ दोनों ही क्षणिक होते हैं। किन्तु बुद्धिमान मनुष्य धर्म के नाम पर सभी व्यापारों को तिलांजलि देकर परात्पर पुरुषोत्तम की शरण में जाकर सर्व शक्तिमान पिता से पूर्ण संरक्षण प्राप्त करते हैं। अत: सनातन धर्म भक्तियोग की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सनातन प्रभु और सनातन धाम को जाना जा सकता है। केवल इसी प्रक्रिया से अप्राकृत विश्व के शाश्वत सुखों को भोगने के लिए वहाँ वापिस लौटा जा सकता है।

सनातन धर्म के अनुयायी आज से भगवद् गीता में निर्दिष्ट उपदेशों को अपनावें। जो व्यक्ति सनातन सिद्धान्तों को अपनाता है उसके लिए कोई बन्धन नहीं है। जो अल्प ज्ञानी हैं वे भी परमेश्वर के धाम को पुन: लौट सकते हैं। यही उपदेश स्वयम् भगवान् कृष्ण ने सिखाया है। मनुष्य को इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए। विशेषत: आज के युग में भ्रमित मनुष्य भौतिकता के अन्धकार में दु:ख भोग रहे हैं, और उनके इस तथाकथित ज्ञान ने ही उन्हें अणु बम्ब बनाने

का अवसर प्रदान किया है। परिणामत: वे सर्वनाश के कगार पर खड़े हैं। सनातन धर्म ही मनुष्य का रक्षक है जो उसे जीवन का सही उद्देश्य बतावेगा औरं उनका आध्यात्मिक ग्रहों के भ्रमणार्थ मार्ग प्रशस्त करेगा जहाँ शाश्वत सुख व अमर ज्ञान सहित वह पर परम पुरुष के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ सकता है।

ओम् तत् सत्।

२

लोकों की विभिन्नता

वर्तमान काल में जब कि मनुष्य चन्द्रमा पर जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। लोगों को यह नहीं सोचना चाहिए कि कृष्ण भावना किसी पुरानी रीति से सम्बन्धित है। जब संसार चन्द्रमा तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहा है, हम लोग 'हरे कृष्ण' का कीर्तन कर रहे हैं। परन्तु लोगों को यह नहीं सोचना चाहिए कि हम लोग आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के पीछे हैं। हमने वैज्ञानिक प्रगति को पहले से ही पार कर लिया है। भगवद् गीता में लिखा है कि लोगों की ऊँचे लोकों में जाने की चेष्टा कोई नई चेष्टा नहीं है। समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है—"मनुष्य का चन्द्रमा पर पहला चरण", परन्तु सूचना देने वालों को यह नहीं पता कि लाखों और करोड़ों लोग वहाँ जाकर वापिस भी आ चुके हैं। यह पहली बार नहीं हुआ है। यह एक प्राचीन अभ्यास है। भगवद् गीता में स्पष्ट रूप से कहा गया है, "मेरे प्रिय अर्जुन ! यदि तुम सबसे ऊँचे लोक ब्रह्मलोक भी जाओगे तो तुम्हें वापिस आना पड़ेगा।" इसलिए विभिन्न लोकों की यात्रा कोई नई चीज नहीं है। यह कृष्ण-भावना-भावित भक्तों को विदित है।

हम कृष्ण-भावना-भावित हैं इसलिए श्रीकृष्ण भगवान् के कथन से उसे हम परम सत्य मानते हैं। वैदिक साहित्यों के अनुसार अनेकों लोक हैं। जिस लोक में हम रहते हैं उसे भूलोक कहते हैं। इसके ऊपर भुर्वलोक है। उसके ऊपर स्वर्गलोक है, चन्द्रमा स्वर्गलोक में आता है। स्वर्गलोक के ऊपर जनलोक, उसके ऊपर महर्लोक और उससे भी ऊपर सत्यलोक है। इसी भाँति नीचे के लोक भी हैं। इस प्रकार,

इस विश्व में १४ प्रकार के लोक हैं और सूर्य एक मुख्य लोक है। ब्रह्म संहिता में सूर्य का इस प्रकार वर्णन किया गया है:

यच्चक्षुरेषा सविता सकलग्रहाणाम्
राजा समस्त सुरमूर्त्तिरशेषतेजा:।
यस्याज्ञाया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो
गोविन्दं आदिपुरुषं तमहम् भजामि ।।

"मैं आदि पुरुष गोविन्द (कृष्ण भगवान्) की आराधना करता हूँ जिनकी आज्ञा से सूर्य में अनन्त शक्ति और अनन्त तेज है और वह अपने चक्र में भ्रमण करता है। सूर्य जो लोकों में प्रमुख है वह भगवान् की आँख है। ब्रह्म संहिता (५/५२)

वास्तव में सूर्य के बिना हम देख नहीं सकते। हम अपनी आँखों पर बहुत गर्व करते हैं परन्तु हम इनसे अपने पड़ौसी को भी नहीं देख सकते। लोग चुनौती देते हैं, "क्या तुम हमें भगवान् दिखला सकते हो?" परन्तु वे देख ही क्या सकते हैं? उनकी आँखों का मूल्य ही क्या है? भगवान् इतने सस्ते नहीं हैं। भगवान् का तो कहना ही क्या, हम सूर्य के प्रकाश के बिना कुछ भी नहीं देख सकते हैं। प्रकाश के बिना हम अन्धे हैं। रात्रि में हम कुछ भी नहीं देख सकते हैं और इसलिए जब सूर्य नहीं होता है तब हम विद्युत का प्रयोग करते हैं।

सृष्टि में केवल एक ही सूर्य नहीं है वरन् लाखों और करोड़ों सूर्य हैं। ब्रह्म संहिता में यह भी लिखा है, "यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि (ब्रह्म संहिता ५/४०)। भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर की चिन्मय ज्योति को ब्रह्म ज्योति कहते हैं और उस ब्रह्म ज्योति में अगणित लोक हैं। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में अगणित लोक हैं उसी प्रकार कृष्ण भगवान् के शरीर की ज्योति में भी अगणित लोक हैं। हमें अनेक विश्वों का ज्ञान है और प्रत्येक विश्व में एक सूर्य है। इस प्रकार लाखों और करोड़ों विश्व हैं और लाखों करोड़ों सूर्य चन्द्रमा और लोक हैं। परन्तु कृष्ण भगवान् कहते हैं कि यदि कोई इन लोकों

में जाने का प्रयत्न करे तो वह केवल अपने समय को व्यर्थ करेगा।

यदि कोई चन्द्रमा पर जाये तो मनुष्य समाज को इससे क्या मिलेगा? इतना धन व्यय कर, इतनी शक्ति लगाकर और दस वर्ष के प्रयत्न के उपरान्त यदि कोई चन्द्रमा पर जाये और उसे छू ले, तो इससे क्या लाभ? यदि वह वहाँ रह सके और अपने मित्रों को बुला ले, फिर भी इससे क्या मिलेगा? जब तक हम प्राकृत जगत में हैं चाहे इस लोक में या उस लोक में, जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था एवं व्याधि के दुःख हमारा पीछा करते रहेंगे। हम इनसे मुक्ति नहीं पा सकते हैं।

यदि आक्सीजन के उपयोग से, हम चन्द्रमा पर रहने के लिए चले भी जायें, तो कब तक हम वहाँ रह सकेंगे? इसके अतिरिक्त यदि हमें रहने का अवसर मिल भी जाये, तो इससे हमें क्या मिलेगा? हमें जीवन की अवधि थोड़ी लम्बी मिल सकती है, परन्तु हम सदैव वहाँ नहीं रह सकते हैं। यह सम्भव नहीं है। लम्बी आयु से हमें क्या मिलेगा? क्या वृक्षों की आयु लम्बी नहीं होती है? सेन फ्राँन्सिस्को के समीप मैंने एक वन देखा है जहाँ ७००० वर्ष पुराना वृक्ष है। परन्तु इससे क्या लाभ? यदि कोई एक स्थान पर ७००० वर्ष तक खड़े रहने पर गर्व करे, तो यह कोई प्रशंसा की बात तो नहीं है।

चन्द्रलोक को गमन व पुनः प्रत्यागमन का वर्णन वैदिक शास्त्रों में है। यह कोई नूतन विधि नहीं है। परन्तु हमारे कृष्ण भावनामृत सङ्घ का उद्देश्य भिन्न है। हम अपना मूल्यवान समय व्यर्थ नहीं करेंगे। कृष्ण भगवान् कहते हैं, "इस लोक या उस लोक की यात्रा की चेष्टाओं में अपना समय व्यर्थ मत करो। तुम्हें क्या मिलेगा? तुम जहाँ भी जाओगे सांसारिक दुःख तुम्हारा पीछा करेंगे।" इसलिए चैतन्य चरितामृत में उसके रचयिता भली-भाँति कहते हैं, "इस संसार में कुछ लोग आनन्द ले रहे हैं और कुछ लोग आनन्द नहीं ले रहे हैं परन्तु वास्तव में प्रत्येक दुःख पा रहा है, भले ही कुछ लोग यह सोचते हैं कि वे सुखी हैं जबकि अन्य लोग दुःख का अनुभव करते हैं।" वास्तव

में सभी दु:खी हैं। इस संसार में रोग का दु:ख कौन नहीं पाता है? किसे बुढ़ापे की पीड़ा का दु:ख नहीं? कौन मरता नहीं है? कोई भी बुढ़ापे और रोग से दु:ख पाना नहीं चाहता, परन्तु प्रत्येक पर ये दु:ख आते हैं। तो आनन्द है कहाँ? यह आनन्द केवल भ्रम है क्योंकि इस प्राकृत जगत में कोई आनन्द नहीं है। यह सब केवल हमारी कल्पनायें हैं। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए, "यह सुख है और यह दु:ख है।" सभी दु:खी हैं। इसलिए चैतन्य चरितामृत में लिखा है, "आहार, निद्रा, मैथुन तथा रक्षा के सिद्धान्त सदैव रहेंगे परन्तु ये विभिन्न स्तरों में रहेंगे।" उदाहरण स्वरूप अमरीकियों ने अपने पिछले जन्मों के पुण्य कर्मों के कारण अमेरिका में जन्म लिया है। भारत की जनता निर्धन और दु:खी है। यद्यपि अमरीकी भली-भाँति चुपड़ी रोटी खा रहे हैं और भारतीय रूखी रोटी खा रहे हैं फिर भी खा दोनों ही रहे हैं। भारत के निर्धन होने से वहाँ की सम्पूर्ण जनता खाद्य सामग्री के अभाव से मर नहीं रही है। चार मुख्य शारीरिक आवश्यकताऐं (आहार, निद्रा, मैथुन एवं रक्षा) किसी भी परिस्थिति में तृप्त की जा सकती हैं, भले ही जन्म पवित्र स्थिति में हुआ हो या अपवित्र स्थिति में। वास्तविक समस्या यह है कि जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के चार सिद्धान्तों से मुक्ति कैसे पावें।

यही वास्तविक समस्या है। यह नहीं है कि "हम क्या खायेंगे?" पशुओं और पक्षियों के समक्ष यह समस्या नहीं है। प्रातः काल वे चहचहाते हैं "चूँ चूँ चूँ।" वे जानते हैं कि उन्हें भोजन मिलेगा। भूखा कोई नहीं मर रहा है और जनाधिक्य नाम की कोई समस्या नहीं है क्योंकि भोजन भगवान् के प्रबन्ध से सभी को मिलता है। गुणों में भेद हो सकता है परन्तु उच्चकोटि का प्रकृति आनन्द पाना ही जीवन का अन्तिम उद्देश्य नहीं है। वास्तविक समस्या यह है कि जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि से मुक्ति कैसे पायें। इसका हल इस विश्व में व्यर्थ यात्रा करके नहीं मिल सकता है। यदि कोई सबसे ऊँचे लोक में ही क्यों

न पहुँच जाये, इस समस्या का कहीं भी हल नहीं है क्योंकि मृत्यु सर्वत्र प्रतीक्षा करती है।

वैदिक शास्त्रों के अनुसार चन्द्रलोक में जीवन की अवधि १०,००० वर्ष है और वहाँ का एक दिन यहाँ के छह महीनों के तुल्य होता है। इसलिए १०,०००×१५० वर्ष चन्द्रमा में जीवन की अवधि है। फिर भी पृथ्वी के लोगों के लिए चन्द्रमा पर जाना और वहाँ अधिक समय तक जीवित रहना सम्भव नहीं है। वरना सम्पूर्ण वैदिक साहित्य मिथ्या सिद्ध हो जायेंगे। हम वहाँ जाने का प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु वहाँ रहना सम्भव नहीं है। यह ज्ञान वेदों में है। हम लोग सीधे उन लोकों में जाने के इच्छुक हैं जहाँ कृष्ण भगवान् रहते हैं। कृष्ण भगवान् भगवद् गीता में कहते हैं, "कोई चन्द्रमा या सूर्य पर जा सकता है या अन्य लाखों और करोड़ों लोकों पर या यदि कोई वहुत अधिक प्राकृत आसक्ति रखता हो तो यहाँ रह सकता है; परन्तु मेरे भक्त मेरे पास आयेंगे।" यही हमारा उद्देश्य है। कृष्ण-भावना का दीक्षा-संस्कार विद्यार्थियों को अन्त में परमधाम कृष्णलोक तक पहुँचाने की गारण्टी लेता है। हम निरर्थक कार्य नहीं कर रहे हैं; हम भी अन्य लोकों में जाने का प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु हम केवल समय व्यर्थ नहीं कर रहे हैं।

कोई भी स्वस्थ चित्त बुद्धिमान व्यक्ति किसी भी प्राकृत लोक में जाने का इच्छुक न होगा क्योंकि चार प्रकार के भौतिक क्लेश वहाँ मिलते हैं। भगवद् गीता से हमें पता लगता है कि यदि हम इस विश्व के सबसे ऊँचे लोक—ब्रह्मलोक पर भी पहुँच जायें तब भी दु:खों के चार सिद्धान्त वहाँ उपस्थित हैं। भगवद् गीता से हमें ज्ञान होता है कि ब्रह्मलोक के एक दिन की अवधि हमारी गणना से लाखों वर्षों के तुल्य होती है। यह सत्य है।

सबसे ऊँचे लोक ब्रह्मलोक तक भी पहुँचा जा सकता है, परन्तु वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि अन्तरिक्ष यान की वर्तमान गति से ४०,००० वर्ष लगेंगे। कौन ४०,००० वर्ष तक आकाश में यात्रा करने का इच्छुक

है ? वैदिक शास्त्रों से ज्ञात होता है कि यदि हम तैयार हों तो किसी भी लोक में प्रवेश कर सकते हैं। तो कोई ऊँचे लोकों में जाना चाहता है, जहाँ देवता लोग निवास करते हैं, तो वह वहाँ भी जा सकता है। इसी प्रकार हम नीचे के लोकों में भी जा सकते हैं या यदि हम इसी लोक में रहना चाहें तो यहाँ भी रह सकते हैं। अन्त में यदि कोई इच्छुक हो तो वह भगवान् के लोकों में भी जा सकता है। यह हमारे प्रयत्नों पर निर्भर करता है। फिर भी प्राकृत जगत के अन्तर्गत सभी लोक अस्थायी हैं। किसी-किसी प्राकृत लोक में जीवन की अवधि बहुत लम्बी हो सकती है परन्तु अन्त में इस प्राकृत जगत के अन्तर्गत सभी जीवों की देह का विनाश होगा और दूसरा शरीर स्वीकार करना पड़ेगा। यहाँ नाना प्रकार के शरीर हैं। मनुष्य शरीर १०० वर्ष तक रहता है जब कि कीड़े-मकोड़ों का शरीर १२ वर्ष तक रहता है। इस प्रकार इन विभिन्न शरीरों की अवधियाँ विभिन्न हैं। यदि कोई वैकुण्ठ लोक में प्रवेश करे तो वह आनन्द और ज्ञान से पूर्ण सनातन जीवन प्राप्त कर सकता है। मनुष्य यदि प्रयत्न करें तो इस पूर्णता को प्राप्त कर सकते हैं। यह भगवद् गीता में लिखा है, वहाँ भगवान् कहते हैं, "जो भगवान् को यथार्थतः जानता है वह मेरी प्रकृति प्राप्त करता है।"

बहुत लोग कहते हैं, "भगवान् महान हैं।" परन्तु यह एक सामान्य उक्ति है। प्रत्येक को जानना चाहिए कि वे कैसे महान हैं और यह अधिकृत शास्त्रों से जाना जा सकता है। भगवद् गीता में भगवान् अपना वर्णन करते हैं और वे कहते हैं, "साधारण मनुष्य के रूप में मेरा अवतरण वास्तव में अप्राकृत है। भगवान् इतने दयालु हैं कि वे एक साधारण मनुष्य के रूप में हमारे समक्ष आते हैं परन्तु उनका शरीर मनुष्य शरीर जैसा नहीं है। दुष्ट जन, जो उन्हें नहीं जानते, कृष्ण भगवान् को अपने जैसा समझते हैं। यह भी भगवद् गीता में लिखा है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

"जब मैं मनुष्य के रूप में अवतीर्ण होता हूँ तो मूढ़ जन मेरा अनादर करते हैं क्योंकि वे मेरा परम भाव एवं हर चीज पर मेरे सर्वेश्वरत्व को नहीं जानते हैं। (गीता ९/११) यदि हम सही शास्त्र का सही निर्देशन में अध्ययन करें तो हमारे लिए कृष्ण भगवान् को जानने का सुअवसर है, और यदि हम सत्य में समझ जायें कि भगवान् का स्वभाव कैसा है तो केवल इसको समझ कर ही हम मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। इस मनुष्य के रूप में हमारे लिए अद्वय तत्त्व भगवान् को पूर्ण रूप में समझना सम्भव नहीं है, परन्तु भगवद् गीता की सहायता से, भगवान् व गुरु के वचनों से, हम उन्हें अपनी सीमाओं के अन्तर्गत भलीभाँति समझ सकते हैं। तथा यदि हम उन्हें यथार्थत: जान लें, तो इस शरीर को त्यागने के उपरान्त, हम परव्योमस्थ वैकुण्ठ में प्रवेश कर सकते हैं। कृष्ण भगवान् कहते हैं, "त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म न इति मामेति कौन्तेय" इस शरीर को छोड़ने के उपरान्त ज्ञानवान प्राकृत जगत में पुन: वापिस नहीं आता है अधिक मेरे पास परव्योम में आता है। (गीता ४/९)।

हमारे कृष्ण भावनामृत संघ का उद्देश्य इस प्रगतिशील वैज्ञानिक विचार का प्रचार आम जनता में करना है और विधि बहुत सरल है। केवल 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।' नामक भगवान के नाम का कीर्तन हृदय की शुद्धि के लिए करना है और यह ज्ञान लेना है कि हम भगवान् के भिन्न अंश हैं और हमारा कर्त्तव्य उनकी सेवा करना है। यह विधि बहुत सुहावनी है—हम 'हरे कृष्ण' मन्त्र का कीर्तन करते हैं, लय या ताल में नृत्य करते हैं और प्रसाद खाते हैं। इस प्रकार इस जीवन में आनन्द लेते हुए, हम अगले जन्म में भगवद् धाम में पहुँचने की तैयारियाँ कर लेते

हैं। यह कोई काल्पनिक विधि नहीं है वरन् वास्तविक विधि है। जो भगवान् की अनुभूति के लिए गम्भीर है कृष्ण भगवान् उनके अन्तर में अपना ज्ञान प्रकाशित करते हैं। कृष्ण भगवान् एवं गुरु दोनों ही गम्भीर आत्मा की सहायता करते हैं। गुरु उन भगवान् के बाहरी प्रत्यक्ष रूप हैं जो प्रत्येक के हृदय में परमात्मा रूप में विद्यमान हैं। जो भगवान् को समझने के लिए बहुत गम्भीर हैं परमात्मा उन्हें योग्य गुरु की ओर ले जाकर उसकी तुरन्त सहायता करते हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक विद्यार्थी को अन्दर और बाहर दोनों ओर से सहायता मिलती है।

श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार परम सत्य तीन स्तरों में जाना जाता है। पहले अव्यक्त ब्रह्म है फिर ब्रह्म का एक मुख्य स्थान में स्थिर रूप परमात्मा है। परमाणु के न्युट्रोन को परमात्मा का प्रतिनिधि माना जा सकता है। इसका वर्णन ब्रह्म संहिता में है। परन्तु अन्त में परम सत्य की अनुभूति कृष्ण भगवान् के रूप में होती है जिनमें सभी अचिन्त्य शक्तियाँ जैसे ऐश्वर्य, शक्ति, प्रसिद्धि, ज्ञान, सौन्दर्य एवं वैराग्य पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। जब रामचन्द्र जी और कृष्ण भगवान् मनुष्य समाज में अवतीर्ण हुए थे तब इन छह शक्तियों का पूर्ण रूप से प्रदर्शन किया गया था। केवल शुद्ध भक्त ही, शास्त्रों के प्रमाण से उन्हें भगवान् के रूप में पहचान सके थे जबकि अन्य लोग माया शक्ति के प्रभाव से भ्रम में रहे थे। इसलिए परम सत्य परम पुरुष हैं जिनके समान न तो कोई है और न उनका कोई प्रतियोगी ही है। अव्यक्त ब्रह्म ज्योति उनके शाश्वत शरीर का प्रकाश है जैसे सूर्य का प्रकाश सूर्य से उत्पन्न होता है।

विष्णु पुराण के अनुसार प्राकृत शक्ति अविद्या कहलाती है जो काम-भोग के कर्मों से प्रदर्शित होती है। यद्यपि मनुष्यों का स्वभाव काम-भोग के लिए प्राकृत शक्ति से मोहित होना और उसके बन्धन में आना है फिर भी वे अप्राकृत या परा शक्ति से सम्बन्धित हैं। इस

दृष्टि से जीव धन शक्ति है जबकि पदार्थ ऋण शक्ति है। पदार्थ की वृद्धि नहीं होती जब तक वह पूर्णांशा अप्राकृत शक्ति के सम्पर्क में न आये। जीव द्वारा प्रदर्शित दिव्य शक्ति का विषय साधारण जनता के लिए निःसन्देह बहुत ही कठिन विषय है इसीलिए वे इस विषय से आश्चर्य में पड़े हुए हैं। कभी-कभी वे अपूर्ण इन्द्रियों से अधूरा समझ पाते हैं और कभी-कभी वे पूर्ण रूप से असफल हो जाते हैं। इसलिए सर्वोत्तम तो यही है कि हम उच्चतम अधिकारी कृष्ण भगवान् या उनके भक्त, जो गुरु-परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं, के वचनों का श्रवण करें।

यह कृष्ण भावनामृत संघ भगवान् श्रीकृष्ण को समझने के उद्देश्य से बना है। गुरु भगवान् के प्रतिनिधि हैं, जो बाहर से सहायता करते हैं, और कृष्ण भगवान् भीतर परमात्मा के रूप में सहायता करते हैं। जीव इन निर्देशनों से लाभ उठा कर अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। हम प्रत्येक से प्रार्थना करते हैं कि इस आन्दोलन को समझने के लिए, वह अधिकृत शास्त्रों का अध्ययन करे। हमने भगवद् गीता, चैतन्य महाप्रभु की शिक्षायें, श्रीमद्भागवत, कृष्ण भगवान्, भक्ति का रस नामक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। हम अपनी मासिक पत्रिका 'भगवद् दर्शन' भी अनेकों भाषाओं में प्रकाशित कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य मनुष्य समाज को जन्म-मृत्यु के चक्र के बन्धन से मुक्त करना है।

सभी को कृष्ण भगवान् के सान्निध्य में पहुँचने का प्रयास करना चाहिए। हमने अपनी पत्रिका 'भगवद् दर्शन' में 'विश्व के परे' नामक लेख प्रकाशित किया है। यह लेख भगवद् गीता के ज्ञान के अनुसार विश्व के बाहर वाले स्थानों का वर्णन करता है। भगवद् गीता एक बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है और इसके अनेकों संस्करण भारत और अमरीका में हैं। अभाग्यवश अनेकों नीच और पापी लोग भगवद् गीता पढ़ाने के लिए पाश्चात्य देशों में आ गये हैं। उन्हें नीच या पापी की उपाधि

इसलिए दी गई है क्योंकि वे धोखे बाज हैं तथा यथार्थ सूचना नहीं देते हैं। परन्तु हमारी भगवद् गीता में परा प्रकृति का अधिकृत वर्णन है।

इस जगत् को प्रकृति कहते हैं, परन्तु एक दूसरी प्रकृति है जो उच्चकोटि की है। यह जगत अपरा प्रकृति है और यह प्रकृति उत्पन्न और नष्ट होती रहती है। परन्तु इसके परे दूसरी प्रकृति है जो सनातन कहलाती है। यह समझना सरल है कि जो भी वस्तु यहाँ उत्पन्न होती है वह अस्थायी है। प्रत्यक्ष उदाहरण हमारा शरीर है। यदि कोई तीस वर्ष का है तो तीस वर्ष पहले उसका शरीर उत्पन्न नहीं हुआ था और अगले पचास वर्ष में वह फिर से समाप्त हो जायेगा। यह प्रकृति का नियम है। यह उत्पन्न होती है और नष्ट होती है जैसे सागर की तरंगें बार-बार उतरती और चढ़ती रहती हैं। फिर भी भौतिकवादी मर्त्य जीवन से सम्पर्क रखते हैं जो कि किसी भी क्षण समाप्त हो सकता है। इसके उपरान्त जैसे इस शरीर की मृत्यु होती है उसी प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि, जो कि एक विशाल प्राकृत शरीर है, उसका भी विनाश होगा तथा हम भाग्यवान् हों या अभागे, इस लोक में हों या उस लोक में, प्रत्येक वस्तु का अन्त होगा। तो हम उन लोकों पर पहुँचने के लिए व्यर्थ में समय क्यों नष्ट करें जहाँ प्रत्येक वस्तु समाप्त हो जायेगी? हमें कृष्णलोक जाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह आध्यात्मिक विज्ञान है—हमें इसे समझने का प्रयत्न करना चाहिए तथा समझ कर इसका उपदेश सम्पूर्ण संसार को देना चाहिए। सभी अन्धकार में हैं। यद्यपि लोगों के पास तनिक भी ज्ञान नहीं है फिर भी वे अहङ्कार में रहते हैं। परन्तु दस वर्ष के प्रयत्नों के उपरान्त चन्द्रमा तक पहुँच कर, वहाँ से कंकड़-पत्थर लेकर वापिस आना कोई ज्ञान नहीं है। अन्तरिक्ष यात्रियों को बहुत गर्व है, "ओह! मैंने छू लिया।" परन्तु उन्हें इससे क्या मिला? यदि हम वहाँ रह सकें तो वह भी अधिक समय तक के लिए सम्भव नहीं है। अन्त में सभी वस्तुओं का नाश होगा।

हमें उन लोकों को खोजना चाहिए जहाँ से फिर वापिस न आना पड़े, जहाँ जीवन सनातन हो और जहाँ हम कृष्ण भगवान् के साथ नृत्य कर सकें। कृष्ण-भावना से यही तात्पर्य है। इस आन्दोलन को गम्भीरता से स्वीकार करो, कृष्ण-भावना प्रत्येक को कृष्ण भगवान् के समीप पहुँचा कर उनके साथ नित्य नृत्य करने का अवसर देगी। वैदिक शास्त्रों से हमें विदित होता है कि यह प्राकृत जगत भगवान् की सम्पूर्ण सृष्टि का एक चौथाई अंश है। भगवान् की सृष्टि का तीन चौथाई अंश परम धाम वैकुण्ठ लोक है। यह ज्ञान हमें भगवद् गीता से मिलता है। वहाँ कृष्ण भगवान् कहते हैं, "यह जगत सम्पूर्ण का एक अंश है।" यदि हम ऊपर आकाश की ओर देखें तो हमारी दृष्टि केवल एक विश्व के अन्दर ही सीमित है परन्तु अनेकों विश्व हैं और उनका समुदाय प्राकृत जगत कहलाता है। इन अगणित विश्वों के पुन्जों के परे परव्योम है जिसका वर्णन भी भगवद् गीता में किया गया है। भगवान् कहते हैं कि प्राकृत जगत के परे दूसरी प्रकृति है जो सनातन है; जिसकी उत्पत्ति व प्रलय का कोई इतिहास नहीं है। सनातन उसे कहा जाता है जिसका प्रारम्भ व अन्त न हो। इसीलिए वैदिक धर्म को सनातन धर्म भी कहा जाता है क्योंकि कोई पता नहीं लगा सकता है कि इसका प्रारम्भ कब हुआ था। ईसाई धर्म का इतिहास २००० वर्ष पुराना है और मुसलमान धर्म का इतिहास ५००० वर्ष पुराना है, परन्तु यदि कोई वैदिक धर्म के इतिहास का पता लगाना चाहे कि इसका प्रारम्भ कब हुआ था तो वह पता नहीं लगा सकता है। इसीलिए इसे सनातन धर्म कहते हैं।

हम यथार्थतः कह सकते हैं कि भगवान् ने संसार बनाया और इससे संकेत मिलता है कि भगवान् सृष्टि के पहले थे। यह 'सृष्टि' शब्द ही संकेत करता है कि भगवान् इस जगत की सृष्टि के पहले थे। इसलिये भगवान् सृष्टि के अन्तर्गत नहीं हैं। यदि भगवान् सृष्टि के अन्तर्गत होते तो वे सृष्टि कैसे करते? तो वे भी सृष्टि के विषयों

में से एक होते। भगवान् सृष्टि के अन्तर्गत नहीं हैं वे सृष्टि कर्ता हैं इसलिये वे सनातन हैं।

दिव्य आकाश है जहाँ अगणित दिव्य (वैकुण्ठ) लोक हैं और अगणित दिव्य (मुक्त) जीव हैं, परन्तु जो लोग वैकुण्ठ लोक में रहने योग्य नहीं हैं वे इस प्राकृत जगत में भेजे जाते हैं। यही विचार 'मिल्टन' के 'पैराडाइज लास्ट' में व्यक्त किया गया है। अपने मन से हमने यह भौतिक शरीर स्वीकार किया है, परन्तु सत्य में हम आत्मा हैं और हमें ऐसा न करना था। कब और कैसे हमने स्वीकार किया इसका कोई पता नहीं लगा सकता है। कोई भी पता नहीं लगा सकता है कि कब पहली बार आत्मा ने इस बन्धन वाले शरीर को स्वीकार किया था। चौरासी लाख जीव योनियाँ हैं जिनमें नौ लाख जल चर हैं और बीस लाख वृक्ष और वनस्पतियाँ हैं। अभाग्यवश यह वैदिक ज्ञान किसी भी विश्वविद्यालय में नहीं पढ़ाया जाता है। परन्तु यह ज्ञान सत्य है। वनस्पति शास्त्रियों और जीव शास्त्रियों को वैदिक सारांशों पर अनुसन्धान करना चाहिए। यद्यपि शिक्षण संस्थाओं में इन्द्रिय सम्बन्धी द्रव्य के विकास में डारविन का सिद्धान्त बहुत प्रचलित है, परन्तु भागवत पुराण तथा अन्य अधिकृत शास्त्रों में वैज्ञानिक रूप में वर्णन किया गया है कि जीव विभिन्न योनियों के शरीरों को एक के बाद एक कैसे प्राप्त करते हैं। यह कोई नवीन विचार नहीं है। परन्तु शिक्षक गण केवल डारविन के सिद्धान्त पर बल देते हैं जबकि वैदिक शास्त्रों से हमारे पास जगत के जीवों की स्थितियों का अनन्त ज्ञान है।

इस संसार के अनेकों विश्वों के जीवों के हम एक छोटे से अंश हैं। जो इस संसार और प्राकृत शरीर में हैं उनकी निन्दा की गई है। उदाहरण स्वरूप शासक द्वारा कारागार के कैदियों की संख्या की निन्दा की जाती है। परन्तु उनकी संख्या सम्पूर्ण जन संख्या की तुलना में बहुत कम होती है। ऐसा नहीं है कि सम्पूर्ण जनता कारागार भेजी जाती है। कुछ ही लोग जो राज्य के नियमों का उलङ्घन करते हैं वे

कारागार में बन्द किये जाते हैं। इसी प्रकार संसार के जीव भगवान् की सृष्टि के जीवों की संख्या की तुलना में बहुत थोड़े हैं। क्योंकि उन्होंने भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन किया, उनकी आज्ञा के अनुसार नहीं चले उन्हें इस संसार में भेजा गया। यदि कोई विचारशील और जिज्ञासु है तो वह यह समझने का प्रयत्न करेगा, "मुझे बन्धन के जीवन में क्यों रखा गया है ? मैं दुःख पाना नहीं चाहता हूँ।"

तीन प्रकार के दुःख या क्लेश होते हैं जिनमें आध्यात्मिक भी सम्मिलित हैं। 'हवाई' में मेरे घर के सामने एक व्यक्ति पशुओं और को उनकी हत्या करके उनके माँस को बेचने के लिए रखता है। मैं अपने विद्यार्थियों को यह उदाहरण दिया करता हूँ, "ये पशु यहाँ खड़े हैं और यदि तुम उनसे कहो 'भागो ! अन्यथा तुम्हारी हत्या की जायेगी' परन्तु वे नहीं भागेंगे। उनके पास इतनी बुद्धि नहीं है।"

ज्ञान और रक्षा के बिना दुःख पाना पाशविक जीवन है। जो यह नहीं समझ सकते हैं कि वे दुःख पा रहे हैं और जो सोचते हैं कि वे भली-भाँति हैं ऐसे लोगों की चेतना पशुओं की भाँति है, मनुष्यों की भाँति नहीं। मनुष्यों को इस लोक में तीन प्रकार के क्लेशों का ज्ञान होना चाहिए। प्रत्येक को जानना चाहिए कि वह जन्म में दुःख पाता है, व्याधि में दुःख पाता है, वृद्धावस्था में दुःख पाता है और मृत्यु में दुःख पाता है और प्रत्येक को जिज्ञासा होनी चाहिए कि वह इन दुःखों से छुटकारा कैसे पाये। यही वास्तविक अनुसन्धान है।

जन्म से ही हम दुःख पा रहे हैं। बच्चा नौ माह तक माँ के गर्भ में कसे हुए थैले में बन्द रहता है। वह हिल भी नहीं सकता है, वहाँ कीड़े-मकोड़े काटते हैं तो वह उनके विरुद्ध बोल भी नहीं सकता है। बच्चे के बाहर आने पर दुःख बने ही रहते हैं। माँ निःसंदेह ही बच्चे की देख भाल करती है परन्तु फिर भी बच्चा रोता ही रहता है क्योंकि वह दुःख पा रहा है। खटमल काटते हैं या पेट में दर्द होता है ; बच्चा चिल्लाता है और माँ यह नहीं जानती है कि कैसे सान्त्वना दे। माँ

के गर्भ से ही दुःख प्रारम्भ होते हैं। जन्म के उपरान्त, जैसे वह बढ़ता है दुःख बढ़ते ही जाते हैं। वह विद्यालय जाना नहीं चाहता है परन्तु उसे जाने के लिए विवश किया जाता है। वह पढ़ना नहीं चाहता परन्तु अध्यापक उसे कार्य दे देते हैं। यदि हम अपने जीवन का विश्लेषण करें तो हमें पता लगेगा कि यह दुःखों से परिपूर्ण है। फिर हम यहाँ क्यों आ रहे हैं ? बन्ध जीव अधिक तीव्र बुद्धि के नहीं हैं। हमें पूछना चाहिए, "हम दुःख क्यों पा रहे हैं ?" यदि कोई बचाव है तो हमें उससे लाभ उठाना चाहिए।

हम भगवान् से सनातन रूप से सम्बन्धित हैं परन्तु किसी भी कारणवश हम अब इस प्राकृत मल से दूषित हो गये हैं। इसलिए हमें वैकुण्ठ लोक वापिस जाने की विधि अपनानी चाहिए। सम्बन्ध स्थापित करने की विधि को योग कहते हैं। 'योग' शब्द का सही अनुवाद युक्तता है जो वियुक्तता के विपरीत है। वर्तमान काल में हम भगवान् के वियुक्त हैं। परन्तु जब हम अपने को उनसे जोड़ लेंगे अर्थात सम्वन्ध फिर से स्थापित कर लेंगे तो मनुष्य योनि का यह जीवन पूर्णता प्राप्त कर लेगा। जीवन काल में हमें पूर्णता के केन्द्र तक पहुँचने का अभ्यास करना चाहिए और मृत्यु काल में जब हम शरीर को छोड़ेंगे, तब पूर्णता की अनुभूति होगी। मृत्यु काल तक प्रत्येक को तैयारियाँ कर लेनी चाहिए। उदाहरण के लिए विद्यार्थी दो से पाँच वर्षों तक विद्यालय में पढ़ते हैं और अन्त में परीक्षा में बैठते हैं। यदि वे परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं तो डिग्री या उपाधि पाते हैं। इसी भाँति जीवन के विषय में यदि हम मृत्यु काल की परीक्षा की तैयारियाँ करें और उत्तीर्ण हों, तो हम वैकुण्ठ लोक पहुँच जायेंगे। मृत्यु काल में ही प्रत्येक वस्तु की परीक्षा होती है।

बंगाली में एक बहुत प्रसिद्ध कहावत है कि जो कुछ भी सिद्धि के लिए किया जाता है उसकी परीक्षा मृत्यु काल में होती है। भगवद् गीता में लिखा है कि मृत्यु काल में शरीर छोड़ते समय हमें क्या करना

चाहिए। ध्यान योगियों के लिए कृष्ण भगवान् निम्नलिखित श्लोक में कहते हैं—

यदक्षरं वेद विदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणम् ॥

"वेदों के ज्ञाता जो 'ॐ' शब्द का उच्चारण करते हैं और जो संन्यास आश्रम के महान ऋषि हैं, वे ब्रह्म में प्रवेश करते हैं। ऐसी सिद्धि के इच्छुक ब्रह्मचर्य का अभ्यास करते हैं। अब मैं तुम्हें वह विधि बतलाऊँगा जिससे कोई मुक्ति प्राप्त कर सकता है। योग का स्तर सभी इन्द्रियों का उनके विषय से वैराग्य है। इन्द्रियों के सभी द्वारों को बन्द कर, मन को हृदय और प्राण वायु को सिर के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर कर, कोई अपने को योग में स्थिर कर सकता है।" (गीता ८/११, १२) योग में इस विधि को प्रत्याहार कहते हैं जिसके माने तकनीकी भाषा में है 'विपरीत'। अभी तो आँखें भौतिक सौन्दर्य देखने में व्यस्त हैं, इसलिए उन्हें सौन्दर्य के आनन्द से हटा कर आन्तरिक सौन्दर्य देखने में लगाना होगा। इसे प्रत्याहार कहते हैं। इसी प्रकार योगी को अन्दर से 'ॐ' ध्वनि सुननी होगी।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

"योग अभ्यास में स्थिर होने और पवित्र स्वर तथा शब्दों की परम सन्धि 'ॐ' का उच्चारण करने के उपरान्त, यदि कोई भगवान् के विषय में सोचता है और अपना शरीर छोड़ता है तो वह निश्चय ही वैकुण्ठ लोक पहुँचता है। (गीता ८/१३) इस प्रकार सभी इन्द्रियों

की बाहरी क्रियाओं को रोकना होगा और मन को विष्णु मूर्ति पर लगाना होगा। यही योग की पूर्णता है। मन बहुत चञ्चल है, इसलिए उसे हृदय में स्थिर करना होगा। जब मन हृदय में स्थिर हो जाये और प्राण वायु ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाये, तो वह योग की पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

सिद्ध योगी तब निर्णय करते हैं कि उन्हें कहाँ जाना है। अगणित प्राकृत लोक हैं और इन लोकों के परे वैकुण्ठ लोक है। योगियों के पास वैदिक शास्त्रों से यह ज्ञान है। उदाहरण के लिए अमेरिका आने से पहले मैंने पुस्तकों से यहाँ का वर्णन पढ़ लिया था। इसी प्रकार ऊँचे लोकों और वैकुण्ठ लोकों का वर्णन वैदिक शास्त्रों में है। योगियों को हर चीज का ज्ञान है और वे जहाँ चाहें उस लोक में जा सकते हैं, उन्हें विमानों की आवश्यकता नहीं है।

संसार के वैज्ञानिक अनेकों वर्षों से प्रयत्न कर रहे हैं और वे सैकड़ों वर्षों तक प्रयत्न करते रहेंगे परन्तु वे इन लोकों पर कभी नहीं पहुँच सकेंगे। हो सकता है कि वैज्ञानिक विधि से एक आध व्यक्ति किसी लोक में पहुँच भी जाये, परन्तु यह सामान्य विधि नहीं बन सकती है। साधारणतया अन्य लोकों में जाने की स्वीकृत विधि ज्ञान योग है। परन्तु भक्ति योग किसी भी प्राकृत लोक में जाने के लिए नहीं है। जो लोग कृष्ण भगवान् की भक्ति में लगे हैं वे इस संसार के किसी भी लोक में रुचि नहीं रखते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि वे इस संसार के किसी भी लोक में प्रगति क्यों न करें सभी जगह उन्हें भौतिक जगत के चार सिद्धान्त मिलेंगे। कुछ लोकों में जीवन की अवधि बहुत लम्बी है फिर भी मृत्यु वहाँ है। फिर भी जो कृष्ण-भावनामय हैं वे जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था, व्याधि वाले सांसारिक जीवन को पार कर जायेंगे।

ब्रह्म जीवन के माने है कि दुःखों और झंझटों से निवारण। इसलिए जो बुद्धिमान हैं वे इस संसार के किसी भी लोक में प्रगति करने का प्रयत्न नहीं करते। लोग चन्द्रमा पर पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं और

यद्यपि इस लोक पर प्रवेश करना बहुत कठिन है; यदि हमें प्रवेश मिल जाये तो जीवन की अवधि बढ़ जायेगी। जीवन की अवधि से हमारा तात्पर्य इस शरीर से नहीं है; यदि हम चन्द्रमा पर इस शरीर से पहुँचें, तो तुरन्त मर जाना निश्चित है।

जब कोई किसी लोक में प्रवेश करता है तो उसके पास उस लोक में रहने योग्य शरीर होना चाहिए। हर लोक में जीव उस लोक में रहने योग्य शरीर से निवास करते हैं। उदाहरण के लिए हम इस शरीर से जल में प्रवेश कर सकते हैं परन्तु जल में रह नहीं सकते हैं। हम वहाँ पन्द्रह या सोलह या चौबीस घण्टे तक रह सकते हैं। बस! जल जन्तुओं के पास अपने सम्पूर्ण जीवन तक जल में रहने योग्य शरीर होता है। इसी प्रकार यदि कोई मछली को जल के बाहर निकाले और स्थल में रखे, तो मछली तुरन्त मर जायेगी। जैसा हम समझते हैं कि इस लोक में भी विशेष स्थानों पर रहने के लिए विशेष प्रकार का शरीर चाहिए, इसी प्रकार यदि हम अन्य लोकों में जाना चाहें तो हमें उपयुक्त शरीर प्राप्त करने की तैयारियाँ करनी पड़ेंगी।

यदि कोई अपने को और अपनी आत्मा को योग से चन्द्रमा तक पहुँचाये तो उसे लम्बी अवधि का जीवन मिलेगा। ऊँचे लोकों में हमारे छः महीने एक दिन के बराबर होते हैं। इस प्रकार जीव वहाँ १०,००० वर्ष तक जीवित रहते हैं। वैदिक शास्त्रों में इस प्रकार के वर्णन हैं। इसलिए कोई निःसन्देह ही लम्बी अवधि का जीवन पा सकता है परन्तु फिर भी मृत्यु है। १०,००० वर्ष या २०,००० वर्ष या लाखों वर्षों के बाद भी मृत्यु आयेगी।

सत्य में हमें मरना नहीं चाहिए। भगवद् गीता के प्रारम्भ में इस बात का समर्थन किया गया है, "न हन्यते हन्यमाने शरीरे।' (गीता २/२०) हम आत्मा हैं और इसलिए हम सनातन हैं। फिर हम अपने को जन्म मृत्यु के चक्र में क्यों डालें? इस प्रकार विचार करना बुद्धिमानी है। जो कृष्ण भावनामय हैं वे बहुत बुद्धिमान हैं

क्योंकि वे उन लोकों में प्रगति करने के इच्छुक नहीं हैं जहाँ मृत्यु है भले ही जीवन की अवधि क्यों न लम्बी हो। बल्कि वे भगवान् जैसा शरीर प्राप्त करना चाहते हैं। ईश्वर: परम: कृष्ण सच्-चिद्-आनन्द विग्रह। (ब्रह्म संहिता ५/१) भगवान् का शरीर सत्, चिद्, आनन्द है। सत् के माने है सनातन और चिद् के माने है—सम्पूर्ण ज्ञान।

जैसा हमारे लेख "कृष्ण आनन्द के सरोवर" में लिखा है कि यदि हम अपने को अप्राकृत जगत में, कृष्णलोक या अन्य किसी वैकुण्ठ लोक में ले जायें तो हम भगवान् जैसा सनातन, आनन्द और ज्ञानमय जीवन प्राप्त कर लेंगे। इसीलिए जो कृष्ण-भावनामय होने का प्रयत्न कर रहे हैं उनके जीवन का उद्देश्य उनकी तुलना में विभिन्न है जो कि इस संसार के ऊँचे लोकों पर जाना चाहते हैं। कृष्ण भगवान् कहते हैं, "मूर्ध्न्याधायात्मन: प्राणमास्थितो योगधारणम्" योग की पूर्णता अपने को वैकुण्ठ लोक ले जाने में है। (गीता ८/१२)

आत्मा शरीर के अन्दर सूक्ष्म अंश है। हम उसे देख नहीं सकते हैं। लोग योग का अभ्यास आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाने के लिए करते हैं। जब योगी जीवित रहते हैं इसका अभ्यास करते हैं परन्तु पूर्णता तभी मिलती है जब आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर शरीर त्यागें। तब वे जिस लोक में चांहें वहाँ जा सकते हैं। योगी की यही पूर्णता है।

यदि योगी चन्द्रमा को देखने का जिज्ञासु हो तो वह कह सकता है, "अरे! देखूँ चन्द्रमा कैसा है" फिर मैं अपने को ऊँचे लोकों में ले जाऊँगा।" जैसे कि यात्री योरप, कैनाड़ा, कैलीफोर्निया या पृथ्वी के अन्य देशों में जाते हैं। इस योग विधि से कोई अनेकों लोकों में जा सकता है परन्तु जहाँ भी वह जायेगा आयात-कर तथा वीजा विधि पायेगा। अन्य लोकों में जाने के लिए उसे योग्यतायें प्राप्त करनी पड़ेंगी।

कृष्ण-भावनामय व्यक्ति किसी भी अस्थाई लोक में रुचि नहीं रखते हैं भले ही उन्हें लम्बी अवधि का जीवन क्यों न दिया जाये। यदि मृत्यु काल में योगी परम ध्वनि के सूक्ष्म रूप 'ॐ' का उच्चारण करे और उस समय विष्णु या कृष्ण भगवान् का ध्यान करे (माम् अनुस्मरन्), तो वह पूर्णता पायेगा। सम्पूर्ण योग विधि का उद्देश्य मन को विष्णु भगवान् पर लगाना है। निराकार वादी कल्पना करते हैं कि वे विष्णु भगवान् के रूप को देख रहे हैं, परन्तु जो भक्त हैं वे ऐसी कल्पनायें नहीं करते हैं; वे सत्य में भगवान् के रूप को देखते हैं। किसी भी तरह चाहे कोई कल्पना से मन लगाये या वह सत्य में देखे, उसे विष्णु रूप में लगाना होगा। 'माम्' के माने है विष्णु भगवान्। कोई भी शरीर छोड़ते समय यदि मन को विष्णु भगवान् पर लगाये, तो वह शरीर त्यागने के बाद वैकुण्ठ लोक जायेगा। जो सत्य में योगी हैं वे किसी अन्य लोक में जाना नहीं चाहते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि अस्थाई लोकों में अस्थाई जीवन है और इसलिए वे उनमें रुचि नहीं रखते हैं। यही बुद्धिमानी है।

भगवद् गीता के अनुसार जो लोग अस्थाई सुख, अस्थाई जीवन तथा अस्थाई सुविधाओं से सन्तुष्ट रहते हैं वे बुद्धिमान नहीं हैं। 'अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्' मन्द बुद्धि वाले लोग अस्थाई चीजों पर रुचि रखते हैं। (गीता ७/२३) श्रीमद्भगवद् गीता का यही कथन है। मैं सनातन हूँ तो मैं अस्थाई चीजों पर रुचि क्यों रखूँ? कौन अस्थाई स्तर चाहता है? कोई नहीं चाहता है। यदि हम किसी मकान में रहते हों और मकान मालिक हमें मकान खाली करने को कहे तो हमें दुःख होगा; परन्तु जब हम स्वयं अच्छे मकान में जा रहे हों तो हमें दुःख नहीं होता है। यही हमारी इच्छा है। हम मरना नहीं चाहते हैं क्योंकि हम सनातन हैं।

यह प्राकृत वातावरण हमारी सत्ता को हमसे छीनता है। श्रीमद्-भागवत में लिखा है, "सूर्य के उदय और अस्त होने के साथ-साथ हमारे जीवन की अवधि घटती जाती है।" प्रतिदिन हमारे जीवन की अवधि कम होती जाती है। यदि सूर्य प्रातः ५:३० पर उदय हो और सायं ५:३० पर अस्त हो तो हमारे जीवन की अवधि १२ घण्टे कम हो जायेगी। यह समय हमें फिर कभी वापिस नहीं मिलेगा। यदि हम किसी वैज्ञानिक से कहें, "हम आपको १२ लाख डालर देंगे यदि आप कृपा करके हमारे १२ घण्टे हमें वापिस कर दें, तो वह उत्तर देगा, "यह सम्भव नहीं है।" वैज्ञानिक ऐसा नहीं कर सकते हैं। इसीलिए श्रीमद्भागवत कहती है कि सूर्योदय और सूर्यास्त के साथ-साथ हमारे जीवन की अवधि घटती जाती है।

समय 'काल' कहलाता है—भूत, वर्तमान और भविष्य जो अभी वर्तमान है वह कल भूत हो जायेगा और जो कि अभी भविष्य है वह कल वर्तमान हो जायेगा। परन्तु यह भूत, वर्तमान और भविष्य शरीर के ही भूत, वर्तमान और भविष्य हैं। हम भूत, वर्तमान और भविष्य की श्रेणियों से सम्बन्ध नहीं रखते हैं। हम सनातन की श्रेणी से सम्बन्धित हैं। इसलिए हर एक को व्याकुल होना चाहिए कि सनातन स्तर पर कैसे पहुँचें। मनुष्यों को प्रगतिशील चेतना का उपयोग पाशविक स्वभाव: आहार, निद्रा, मैथुन, सुरक्षा में नहीं लगाना चाहिए बल्कि सनातन जीवन प्राप्त करने के मूल्यवान मार्ग में लगाना चाहिए। यह कहा जाता है कि सूर्य हर क्षण, हर घण्टे और हर दिन, हमारे जीवन की अवधि छीन रहा है, परन्तु यदि हम उत्तम श्लोक (भगवान्) के विषय में लग जायें तो समय छीना नहीं जा सकता है। समय जो कृष्ण भावना के मन्दिरों में लगाया जाता है वह छीना नहीं जा सकता है। यह सम्पत्ति है; धन है ऋण नहीं। जीवन की अवधि जहाँ तक कि उसका शरीर से सम्बन्ध है भले ही छिन जाये; कितनी ही अच्छी तरह से इसे क्यों न रखा जाये, कोई भी इसे रख नहीं सकता है। परन्तु

कृष्ण भावना में जो कुछ भी ब्रह्मज्ञान हम प्राप्त करते हैं वह सूर्य द्वारा छीना नहीं जा सकता है। यह एक ठोस सम्पत्ति बन जाती है।

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' का कीर्तन बहुत सरल है। कीर्तन में व्यतीत किया गया समय शरीर से सम्बन्धित समय की भाँति छीना नहीं जा सकता है। पचास वर्ष पूर्व मैं एक नव युवक था परन्तु अब वह समय छिन गया है वापिस नहीं मिल सकता है। परन्तु ब्रह्मज्ञान जो मैंने अपने गुरु से प्राप्त किया था वह छीना नहीं जा सकता है बल्कि वह मेरे साथ जायेगा। शरीर छोड़ने के उपरान्त भी वह मेरे साथ जायेगा ; परन्तु यदि वह इस जीवन में पूर्ण हो गया तो वह मुझे सनातम धाम ले जायेगा।

यह संसार और वैकुण्ठ दोनों ही कृष्ण भगवान् के हैं। हम किसी भी चीज के स्वामी नहीं हैं। यह सब भगवान् की सम्पत्ति है जैसे राज्य में हर चीज राजा की होती है चाहे वह कारागार में हो या कारागार के बाहर। इस संसार में बन्ध जीवन कारागार के जीवन की भाँति है। कैदी स्वतन्त्र रूप से एक कमरे से दूसरे कमरे में नहीं जा सकता है। स्वतन्त्र जीवन में हर कोई एक घर से दूसरे घर जा सकता है परन्तु कारागार का कैदी ऐसा नहीं कर सकता है, उसे अपने कमरे में रहना पड़ेगा। यह सब लोक कमरों की भाँति हैं। हम लोग चन्द्रमा पर पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु यह यान्त्रिक विधि से सम्भव नहीं है। चाहे हम अमेरिकन, भारतीय, चीनी या रूसी भले ही क्यों न हों, हमें यह लोक रहने के लिए दिया गया है। हम इसे छोड़ नहीं सकते हैं यद्यपि लाखों और करोड़ों लोक हैं और हमारे पास ऐसे यन्त्र हैं जिससे हम जा सकते हैं, क्योंकि हम प्रकृति के बन्धन में हैं। कैदी जिसको रहने के लिए एक विशेष कमरा दिया गया है वह बिना अधिकारियों की आज्ञा के कमरा बदल नहीं सकता है। भगवद् गीता में कृष्ण भगवान् कहते हैं कि किसी को कमरे बदलने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इससे वह सुखी नहीं होगा। यदि कैदी सोचे, "मैं इस कमरे में हूँ, मुझे

अधिकारियों से प्रार्थना करके कमरा बदल लेना चाहिए और इससे मैं सुखी हो जाऊँगा, तो यह एक गलत विचार है। जब तक कोई कारागार की दीवारों के अन्दर है वह सुखी नहीं हो सकता है। हम लोग पूँजीवाद समाजवाद के कमरे बदल कर सुखी होने का प्रयत्न कर रहे हैं। उद्देश्य 'इस वाद' या 'उस वाद' से मुक्त होना है। हर एक को सभी भौतिकवादों से मुक्त हो जाना चाहिए तभी वे सुखी होंगे। कृष्ण भावना का यही कार्य क्रम है।

हम लोग परम पुरुष से परामर्श ले रहे हैं। वे कहते हैं, "मेरे प्रिय अर्जुन ! तुम सबसे ऊँचे लोक ब्रह्मलोक तक प्रगति करके पहुँच सकते हो और वह रुचिकर स्थान है क्योंकि वहाँ जीवन की अवधि बहुत लम्बी होती है।" हम लोग वहाँ के आधे दिन की गणना भी नहीं कर सकते हैं। यह हमारी अङ्कगणित की गणना के बाहर है। परन्तु ब्रह्मलोक तक में मृत्यु है। इसलिए कृष्ण भगवान् कहते हैं, "इस लोक से उस लोक में प्रगति करने के प्रयत्न में समय व्यर्थ मत करो।"

अमेरिका में जिन लोगों को मैंने देखा है वे बहुत चंचल हैं। वे एक घर से दूसरे घर या एक देश से दूसरे देश जाते रहते हैं। वहाँ यह चञ्चलता इसलिए है कि हम अपना वास्तविक घर ढूँढ़ रहे हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान जाने से सनातन जीवन नहीं मिलेगा। सनातन जीवन कृष्ण भगवान् के साथ है। इसलिए कृष्ण भगवान् कहते हैं, "हर चीज मेरी है और मेरा परम धाम है जो गोलोक वृन्दावन कहलाता है। यदि कोई वहाँ जाना चाहता है तो उसे केवल कृष्ण भावनामय बनना पड़ेगा और समझना पड़ेगा कि कैसे कृष्ण भगवान् जन्म लेते हैं और अर्न्तध्यान हो जाते हैं, उनका स्वरूप क्या है, हमारा स्वरूप क्या है, उनसे हमारा क्या सम्बन्ध है और हम कैसे रहें, इन विचारों को वैज्ञानिक विधि से समझने का प्रयत्न करना चाहिए। कृष्ण भावना में हर चीज वैज्ञानिक है। यह कृत्रिम, प्रमादी, भावुक,

हठधर्मी अथवा काल्पनिक नहीं है। यह सत्य है वास्तविकता है। हर एक को सत्य में कृष्ण भगवान् को समझना चाहिए।

रुचि से या अरुचि से, हमें यह शरीर छोड़ना है। एक दिन आयेगा जब हमें प्रकृति के समक्ष झुक कर शरीर त्यागना पड़ेगा। यहाँ तक कि राष्ट्रपति कैनेडी को भी प्रकृति के नियमों के समक्ष झुकना पड़ा था और अपना शरीर बदलना पड़ा था। वे नहीं कह सके थे, "ओ! मैं राष्ट्रपति हूँ, मेरा नाम कैनेडी है, मैं ऐसा नहीं कर सकता हूँ। उन्हें विवश किया गया था। इस प्रकार प्रकृति कार्य करती है।

हमारी प्रगतिशील मानव चेतना का उद्देश्य यह समझना है कि प्रकृति कैसे कार्य करती है। मानव चेतना के अतिरिक्त कुत्तों, बिल्लियों, कीड़े-मकोड़ों, वृक्षों, पक्षियों, पशुओं तथा अन्य योनियों की भी चेतनायें हैं। परन्तु हम उन चेतनाओं में रहने के लिए नहीं बने हैं। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि अनेकों जन्मों के उपरान्त हमें मनुष्य योनि मिली है। अब हमें इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। कृपा करके इस मनुष्य योनि का उपयोग कृष्ण भावना जाग्रत करने के लिए कीजिए और सुखी होइये।

—o—

भगवत्कृपामय

श्री ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापक आचार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावना सङ्घ